જ્યોતિશિખા

अभिनव योजना

अमृत अध्ययन मण्डल (स्टडी सर्किल)

इस योजना के अंतर्गत उच्चस्तरीय आध्यात्मिक परिचर्चाओं के रूप में गहन एवं गूढ़ विषयों पर **आचार्यश्री रजनीश** की सृजनात्मक जीवन-दृष्टि एवं चिन्तन-प्रधान विचारों से लाभान्वित होने का अपूर्व अवसर केवल उन्हीं सज्जनों को प्राप्त होगा जो 'अमृत अध्ययन मण्डल' के नियमित सदस्य होंगे।

सदस्यता शुल्क, नियम आदि की विस्तृत जानकारी के लिए **'जीवन जागृति केन्द्र'** बम्बई से शीघ्र सम्पर्क स्थापित करने की कृपा करें।

•

अभूतपूर्व अनुष्ठान

महावीर वाणी

प्रवचनमाला के प्रवक्ता :

आचार्यश्री रजनीश

पर्यूषण के पवित्र पर्व के अवसर पर अध्यात्म-प्रेमियों, साधकों, भगवान महावीर के अनुयायियों (श्वेतांबर एवं दिगंबर) सभी के लाभार्थ स्थानीय पाटकर हॉल (नाथीबाई ठाकरसी रोड, मैरीन लाइन्स, बम्बई-१) में १८ अगस्त से ४ सितंबर तक **आचार्यश्री रजनीश** के श्रीमुख से महावीर वाणी।

१८ दिनों के इस प्रवचन समारोह का लाभ लेने के लिए प्रवेश शुल्क तथा स्थान सुरक्षित कराने आदि के बारे में **जीवन जागृति केन्द्र**, बम्बई से सम्पर्क स्थापित कीजिए।

•

तीन नवीन पुस्तकें

(प्रेस में : शीघ्र ही प्रकाशित होने जा रही हैं)

- **मैं कहता आंखन देखी**
- **THE ONLY FREEDOM**
- **GATELESS GATE**

सम्पर्क स्थल : जीवन जागृति केंद्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डॉ. डी. एन. रोड, बम्बई-१ : फोन २६४५३०

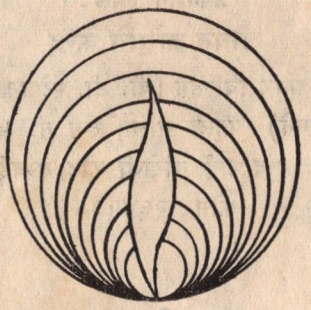

ज्योति शिखा

(आचार्यश्री रजनीश की अमृतवाणी का संकलन)

•

मान्यक सम्पादक :

महीपाल

अरविन्द

•

अंक : २१ वां

जून १९७१

•

मुखपृष्ठ सज्जा :
रंगरेखा स्टुडियो

•

एक प्रति : रु. १–२५, वार्षिक शुल्क : रु. ५–००

प्रकाशन स्थल :
जीवन जागृति केन्द्र
एम्पायर बिल्डिंग (वी. टी. स्टेशन के सामने) पहला माला, रूम नं. ५३,
डॉ. दादाभाई नौरोजी रोड, बम्बई-१
फोन : २६४५३०

मुद्रण स्थल :
स्टेट्स पीपल प्रेस,
फोर्ट, बम्बई-१

अनुक्रम

चर-अचर में व्याप्त	महीपाल	५
जिनका कभी अर्थ था। (मंदिर)	... ...	६
एक संन्यासी जेल में	मां योग यशा	२४
अपरिग्रह	... ...	२८
यात्रा संस्मरण : आबू	किशोरीरमण टण्डन	३४
चिन्मय कौन ? अजन्मा क्या ?	... ...	४०
नाचो, लोगों नाचो	ब्रह्मदत्त	५५
अचौर्य	... ...	६९
मुमुक्षुओं के नाम पत्र	आचार्यश्री	७८
नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय	स्वामी योग चिन्मय	८०

चादर के संपुटों में विराजमान विराट् व्यक्तित्व

निस्तरंग

आचार्यश्री रजनीश

चर-अचर में व्याप्त

आज नभ की नीलिमा मेरे नयन में आ बसी !
रख सका अस्तित्व पावस
आज पलकों में उतर ही ;
पा गये तारक अमरता ,
अश्रुओं में डूब कर ही ;
दामिनी घन छोड़कर मेरे हृदय में आ हँसी !
मिल न पाये अधर, वंशी
खुद मुखर हो, मुसकरा दी ,
बन गई निष्कम्प प्रज्ञा,
प्राण की लौ थरथराती ;
तिमिर का रूपान्तरण हो, यामिनी द्युतिमय लसी !
चिरन्तन चैतन्य सब, फिर
अन्त किसका, आदि कैसी ?
जन्म कैसा, जरा कैसी ,
मृत्यु और समाधि कैसी ?
चर-अचर में व्याप्त, विचरित चेतना की तापसी !

—महीपाल

जिनका कभी अर्थ था पर अब व्यर्थ हो गए हैं

(महीपाल के साथ वार्तालाप)

प्रश्न : आचार्यश्री, मन्दिर, तीर्थ, तिलक, टीके, मूर्तिपूजा, माला, मंत्र, तंत्र, शास्त्र-पुराण, हवन, यज्ञ, अनुष्ठान, श्राद्ध, ग्रह-नक्षत्र, ज्योतिष गणना, शकुन, अपशकुन, इनका कभी अर्थ था, पर अब व्यर्थ हो गये हैं। इन्हें समझाने की कृपा करें और बतायें कि क्या ये साधना के बाह्य उपकरण थे? रिमेम्बरिंग या स्मरण की मात्र बाह्य व्यवस्था थी जो समय की तीव्र गति के साथ पूरी की पूरी उखड़ गयी? अथवा भीतर से भी इसके कुछ अन्तर संबंध थे? क्या समय इन्हें पुनः लेने को राजी होगा?

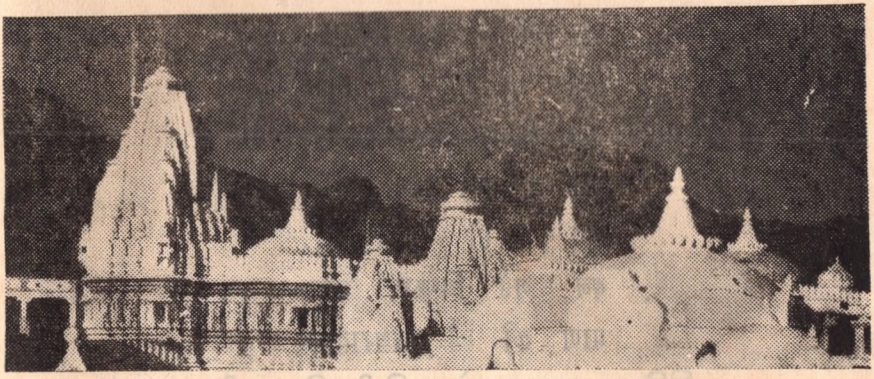

मंदिर

उत्तर : जैसे हाथ में चाभी हो, चाभी को हम कुछ भी सीधा जानने का उपाय करें, चाभी से ही चाभी को समझना चाहें तो कोई कल्पना भी नहीं कर सकता उस चाभी की खोज-बीन से, कि कोई बड़ा खजाना उसके हाथ लग सकता है। चाभी में ऐसी कोई भी सूचना नहीं है जिससे छिपे हुए खजाने का पता लगे। चाभी अपने में बिल्कुल बन्द है। चाभी को हम तोड़ें, फोड़ें, काटें,

लोहा हाथ लगे, और धातुएं हाथ लग जायं, उस खजाने की कोई खबर हाथ न लगेगी जो चाभी से मिल सकता है। और जब भी कोई चाभी ऐसी हो जाती है जीवन में कि जिससे खजानों का हमें पता नहीं लगता है, तब सिवाय बोझ ढोने के हम और कुछ भी नहीं ढोते। और जिन्दगी में ऐसी बहुत सी चाभियां हैं जो किन्हीं खजानों का द्वार खोलती हैं– आज भी खोल सकती हैं। पर न हमें खजानों का कोई पता है, न उन तालों का हमें कोई पता है जो हमसे खुलेंगे। और जब तालों का भी पता नहीं होता और खजानों का भी पता नहीं होता तो स्वभावतः हमारे हाथ में जो रह जाता है उसको हम चाभी नहीं कह सकते। वह चाभी तभी है जब किसी ताले को खोलती हो। पर कभी उस चाभी से खजाने खुले थे, आज उससे कुछ भी नहीं खुलता है, इसलिए बोझिल हो गई है, तो भी मन उसे फेंक देने का नहीं होता। कहीं अचेतन में मनुष्य जाति के वह धीमी सी गन्ध बनी ही रह जाती है। चाहे हजारों साल पहले वह चाभी कोई ताला खोलती रही हो, लेकिन मनुष्य की अचेतना में, उससे कभी ताले खुले हैं, कभी कोई खजाने उससे उपलब्ध हुए हैं,–इस स्मृति के कारण ही उस चाभी के बोझ को हम ढोये चले जाते हैं। न कोई खजाना खुलता है अब, न कोई ताला खुलता है फिर भी कोई कितना ही समझाये कि चाभी बेकार है, उसे फेंक देने का साहस नहीं जुट पाता है। कहीं किसी कोने में मन के, कोई आशा पलती ही रहती है कि कभी कोई ताला खुल जाय !

मन्दिर है। पृथ्वी पर ऐसी एक भी जाति नहीं है जिसने मन्दिर जैसी कोई चीज निर्मित न की हो। वह उसे मस्जिद कहती हो, चर्च कहती हो, गुरुद्वारा कहती हो, इससे बहुत प्रयोजन नहीं है। आज तो यह संभव है कि हम दूसरी जातियों से भी कुछ सीख लें। एक वक्त था, तब दूसरी जातियां हैं भी, इसका भी हमें पता नहीं था। तो मन्दिर कोई ऐसी चीज नहीं है, जो बाहर से किन्हीं कल्पना करने वाले लोगों ने खड़ी कर ली हो। वह मनुष्य की चेतना से ही निकली हुई कोई चीज है। मनुष्य कितनी ही दूर, कितने ही एकान्त में, पर्वत में,

पहाड़ में, झील पर, कहीं भी बसा हुआ हो, उसने मन्दिर जैसा कुछ जरूर निर्मित किया है। मनुष्य की चेतना से ही कुछ निकल रहा है। यह अनुकरण नहीं है; एक दूसरे को देखकर कुछ निर्मित नहीं हो गया है। इसलिये विभिन्न तरह के मन्दिर बने, लेकिन मन्दिर बने।

बहुत फर्क है एक मन्दिर में और एक मस्जिद में। उनकी व्यवस्था में बहुत फर्क है। उनकी योजना में बहुत फर्क है। लेकिन आकांक्षा में फर्क नहीं है, अभीप्सा में फर्क नहीं है। मनुष्य कहीं भी हो, कितना ही दूसरों से अपरिचित हो, वह अपनी चेतना में कहीं कोई बीज छिपाये है, एक तो बात यह ख्याल में ले लेनी जैसी है। दूसरी बात यह भी ख्याल में ले लेनी जरूरी है कि हजारों साल हो जाते हैं, नहीं तालों का पता रह जाता है, नहीं खजानों का। लेकिन फिर भी जिस किसी चीज को हम, किसी बिल्कुल अनजाने मोह से ग्रसित हो लिए चलते हैं, जिसपर हजार आघात होते हैं, बुद्धि जिसको सब तरफ से तोड़ने चलती है, युग का आज का बुद्धिमान जिसे सब तरह से इन्कार करता है, फिर भी मनुष्य का मन उसे संभाले चलता है इस सबके बावजूद। तो यह बात स्मरण रख लेनी जरूरी है कि मनुष्य की अचेतना में, आज उसे ज्ञात नहीं है तो भी, कहीं कोई गूंजती सी धुन जरूर है जो कहती है कि कभी कोई ताला खुलता था। अचेतना में इसलिए, कि हममें से कोई भी नया पैदा हो गया हो, ऐसा नहीं है। हममें से सभी अनेक बार पैदा हो चुके हैं। ऐसा कोई युग न था जब हम न हों। ऐसी कोई घड़ी न थी जब हम न हों। उस दिन जो हमारी चेतना थी, उस दिन जो हमने चेतन जाना था, वह आज हजारों परतों के भीतर दबा हुआ 'अचेतन' बन गया है। उस दिन अगर हमने मंदिर का रहस्य जाना था, और उससे हमने किसी द्वार को खुलते देखा था, तो आज भी हमारे अचेतन के किसी कोने में वह स्मृति दबी पड़ी है। बुद्धि लाख इन्कार कर दे, लेकिन बुद्धि उतनी गहरी नहीं हो पाती जितनी गहरी वह स्मृति है। इसलिए सब आघातों के बावजूद, और सब तरह से व्यर्थ दिखायी पड़ने के बावजूद भी कुछ चीजें हैं, कि परसिस्ट करती हैं, हटतीं नहीं। नये रूप लेती हैं, लेकिन जारी रहती हैं। यह तभी संभव होता है जब कि हमारे अनंत जन्मों की यात्रा में, अनंत-अनंत बार, किसी चीज को हमने जाना है— यद्यपि आज भूले हैं। और इन में से प्रत्येक का बाह्य उपकरण की तरह तो उपयोग हुआ ही है, आंतरिक अर्थ भी हैं, अभिप्राय भी हैं।

पहले तो मंदिर को बनाने की जो जागतिक कल्पना है, वह यह कि सिर्फ

मनुष्य है, जो मंदिर बनाता है। घर तो पशु भी बनाते हैं, घोंसले तो पक्षी भी बनाते हैं, वे मंदिर नहीं बनाते। मनुष्य की, जो भेद रेखा खींची जाय पशुओं से, उसमें यह भी लिखना ही पड़ेगा कि वह मंदिर बनाने वाला प्राणी है। कोई दूसरा मंदिर नहीं बनाता। अपने लिए आवास तो बिल्कुल ही स्वाभाविक है। अपने रहने की जगह तो कोई भी बनाता है। छोटे छोटे कीड़े भी बनाते हैं, पक्षी भी बनाते हैं, पशु भी बनाते हैं; लेकिन परमात्मा के लिए आवास मनुष्य का जागतिक लक्षण है। परमात्मा के लिए भी आवास, उसके लिए भी कोई जगह बनाना! परमात्मा के गहन बोध के अतिरिक्त मंदिर नहीं बनाया जा सकता है। फिर परमात्मा का गहन बोध भी खो जाय तो मंदिर बचा रहेगा, लेकिन बनाया नहीं जा सकता बिना बोध के। जैसे आपने एक अतिथि गृह बनाया घर में, वह इसलिये कि अतिथि आते रहे होंगे। अतिथि न आते हों तो आप अतिथि गृह नहीं बनाने वाले हैं। हालांकि यह हो सकता है कि अब अतिथि न आते हों और अतिथि गृह खड़ा रह गया हो। तो परमात्मा के लिए भी आवास की धारणा उन क्षणों में पैदा हुई जब परमात्मा सिर्फ कल्पना की बात नहीं थी, अनेक लोगों के अनुभव की बात थी। और परमात्मा के अवतरण की जो प्रक्रिया थी, उसके उतरने की, उसके लिए एक विशेष आवास, एक विशेष स्थान, जहां परमात्मा अवतरित हो सके, पृथ्वी के हर कोने पर आवश्यक अनुभव हुआ।

प्रत्येक चीज के अवतरण में, आग्रहण में, रिसेप्टिव होने में, एक संयोजन है।

यों समझें कि अभी जो हमारे पास से रेडियो वैव्ज गुजर रही हैं हम उन्हें पकड़ नहीं पायेंगे। रेडियो के उपकरण के बिना उन्हें पकड़ना कठिन होगा। कल अगर एक ऐसा वक्त आ जाय कि एक महायुद्ध हो जाय, हमारी सारी टेक्नोलाजी अस्त-व्यस्त हो जाय, और आपके घर में एक रेडियो रह जाय तो आप उसे फेंकना न चाहेंगे। ध्यान रहे अब कोई रेडियो स्टेशन नहीं बचा, अब रेडियो से कुछ पकड़ा नहीं जाता, अब रेडियो सुधारने वाला भी मिलना

मुश्किल है। हो सकता है दस-पांच पीढ़ियों के बाद भी आपके घर में वह रेडियो रखा रहे। और तब अगर कोई पूछे कि इसका क्या उपयोग है तो कठिन हो जाएगा बताना। लेकिन इतना जरूर बताया जा सकेगा कि पिता आग्रहशील थे इसको बचाने के लिए, उनके पिता भी आग्रहशील थे। इतना उन्हें याद है कि हमारे घर में उसको बचाने वाले आग्रहशील लोग थे, वे बचाये चले गये। हमें पता नहीं, इसका क्या उपयोग है? आज इसका कोई भी उपयोग नहीं है। और रेडियो को तोड़कर अगर हम सब उपाय भी कर लें तो भी इसकी खबर मिलना बहुत मुश्किल है कि इससे कभी संगीत बजा करता था, कि कभी इससे आवाज निकला करती थी। सीधे रेडियो को तोड़कर देखने से कुछ पता चलने वाला नहीं है। वह तो सिर्फ एक आग्राहक था, जहां कुछ चीज घटती थी। घटती कहीं और थी, लेकिन पकड़ी जाती थी। ठीक ऐसे ही मंदिर आग्राहक थे, रिसेप्टिव इन्स्ट्रूमेंट थे। परमात्मा तो सब तरफ है। आप भी सब जगह मौजूद हैं, परमात्मा भी सब जगह मौजूद है। लेकिन किसी विशेष संयोजन में आप एट्यूनड हो जाते हैं। आपकी ट्युनिंग मेल खाती है, ताल-मेल हो जाता है। तो मंदिर आग्राहक की तरह उपयोग में आये। वहां सारा इन्तजाम ऐसा था कि जहां दिव्य भाव को, दिव्य अस्तित्व को, भगवत्ता को हम ग्रहण कर पायें। जहां हम खुल जायें और उसे ग्रहण कर पायें। सारा इन्तजाम मंदिर का वैसा ही था। अलग अलग लोगों ने अलग अलग तरह से इन्तजाम किया था। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है कि अलग अलग रेडियो बनाने वाले लोग, अलग अलग शकल का रेडियो बनायें। बाकी, बहुत गहरे में प्रयोजन एक है।

इस मुल्क में मंदिर बने। और कोई तीन-चार तरह के ही खास तरह के मंदिर हैं, जिनके रूप से बाकी सारे मन्दिर बने हैं। इस मुल्क में जो मन्दिर बने वह आकाश की आकृति के हैं। यानी जो गुम्बज है मंदिर का, वह आकाश की आकृति में है। और प्रयोजन यह है कि अगर आकाश के नीचे बैठकर म ओम् का उच्चार करूँ तो मेरा उच्चार खो जायगा। क्योंकि मेरी शक्ति बहुत कम है, विराट आकाश है चारों तरफ। मेरा उच्चार लौटकर मुझपर नहीं बरस सकेगा। मैं जो पुकार करूंगा, वह पुकार मुझपर लौटकर नहीं आयेगी, वह अनंत में खो जायेगी। मेरी पुकार मुझपर लौटकर आ जाय, इसलिए मन्दिर का गुम्बज निर्मित किया गया। वह आकाश की छोटी प्रतिकृति है, ठीक अर्ध-गोलाकार, जैसा आकाश चारों तरफ पृथ्वी को छूता है,— ऐसा एक छोटा आकाश निर्मित किया है गुम्बज में। उसके नीचे मैं जो पुकार करूंगा, मंत्रोच्चार करूंगा, ध्वनि

करूंगा, वह सीधी आकाश में खो नहीं जायेगी। गोल गुम्बज उसे वापस लौटा देगा। जितना गोल होगा गुम्बज, उतनी सरलता से वह वापस लौट आयेगी, और उतनी ही ज्यादा प्रतिध्वनियां उसकी पैदा होंगी। फिर तो ऐसे पत्थर भी खोज लिये गये जो ध्वनियों को वापस लौटाने में बड़े सक्षम हैं। अजन्ता का एक बौद्ध चैत्य है, उसमें लगे पत्थर ठीक उतनी ही ध्वनि को तीव्रता से लौटाते है, उतनी ही चोट को प्रतिध्वनित करते है, जैसे तबला। आप तबले पर चोट करें, वैसी ही पत्थर पर चोट करें तो उतनी ही आवाज होगी। कुछ विशेष ध्वनियों को, जो बहुत सूक्ष्म हैं, साधारण गुम्बज नहीं लौटा पाता है, उसके लिए उन पत्थरों का उपयोग किया गया।

क्या प्रयोजन है इन सबका ? प्रयोजन ये है कि अब आप ओम् का उच्चार करते हैं, जब बहुत सघनता से, बहुत तीव्रता से आप ओम् का उच्चार करते हैं और मंदिर का गुम्बज सारे उच्चार को वापस आप पर फेंक देता है, तो एक वर्तुल निर्मित होता है, एक सर्किल निर्मित होता है उच्चार का, ध्वनि का, लौटती ध्वनि का। मन्दिर का गुम्बज आपकी गूंजी हुई ध्वनि को आप तक लौटाकर एक वर्तुल निर्मित करवा देता है। उस वर्तुल का आनन्द ही अद्भुत है। अगर आप खुले आकाश के नीचे ओम् का उच्चार करेंगे तो वर्तुल निर्मित नहीं होगा और आपको कभी आनन्द का पता नहीं चलेगा। जब वर्तुल निर्मित होता है तब आप सिर्फ पुकारने वाले नहीं है, पाने वाले भी हो जाते है। और उस लौटती हुई ध्वनि के साथ दिव्यता की प्रतीति प्रवेश करने लगती है। आपकी की हुई ध्वनि तो मनुष्य की है, लेकिन जैसे ही वह लौटती है वह नये वेग और नयी शक्तियों को समाहित करके वापस लौट आती है। इस मन्दिर को, इस मन्दिर के गुम्बज को, मंत्र के द्वारा ध्वनि-वर्तुल निर्मित करने के लिए प्रयोग किया गया था। अगर बिल्कुल शांत, एकान्त स्थिति में आप बैठकर उच्चार करते हों तो जैसे ही वर्तुल निर्मित होगा, विचार बन्द हो जायेंगे। वर्तुल इधर निर्मित हुआ, उधर विचार बन्द हुए। जैसा कि मैंने कई बार कहा है, स्त्री-पुरुष के संभोग में वर्तुल निर्मित हो जाता है शक्ति का, और जब वर्तुल निर्मित होता है तभी संभोग का क्षण समाधि का इशारा करता है। अगर पद्मासन या सिद्धासन में बैठे बुद्ध और महावीर की मूर्तियां देखें तो वह भी वर्तुल ही निर्मित करने के अलग ढंग हैं। जब दोनों पैर जोड़ लिए जाते हैं और दोनों हाथ पैरों के ऊपर रख दिये जाते हैं तो पूरा शरीर वर्तुल का काम करने लगता है। खुद के शरीर की विद्युत फिर कहीं से बाहर नहीं निकलती। पूरी वर्तुलाकार

बनने लगती है। एक सर्किट निर्मित होता है, और जैसे ही सर्किट निर्मित होता है वैसे ही विचार शून्य हो जाते हैं। अगर इसे विद्युत की भाषा में कहें तो आपके भीतर विचारों का जो कोलाहल है वह आपकी ऊर्जा के वर्तुल न बनने की वजह से है। वर्तुल बना कि ऊर्जा शान्त और समाहित होने लगती है। तो मन्दिर के गुम्बज से वर्तुल बनाने की बड़ी अद्‌भुत प्रक्रिया है और यही अंतरंग अर्थ भी है उसका।

मन्दिर के द्वार पर हमने घण्टा लटका रखा है, वह भी सिर्फ इसीलिये, आप जब ओम् का उच्चार करेंगे, हो सकता है बहुत धीमे करें ख्याल में भी न आये, पर जोर से घण्टे की आवाज उस वर्तुल का आपको स्मरण दिला जायेगी तत्काल,—उस गूंजती हुई ध्वनि का। वर्तुल पर वर्तुल। जैसे पानी में फेंका गया पत्थर हो और लहर पर लहर, रिपल पर रिपल उठाता चला गया हो।

तिब्बती मन्दिर में तो घण्टा नहीं रखते, सब धातुओं का बना हुआ एक बर्तन रखते हैं घड़े की भांति और उसमें लकड़ी का डण्डा रखते हैं घुमाने के लिए। उसको सात बार अन्दर घुमाकर जोर से चोट करते हैं। सात बार घुमाने पर, और चोट करने पर "मणि पद्मे हुं", इसकी पूरी आवाज निकलती है—पूरा मंत्र! पूरा घड़ा चिल्लाकर कहता है "मणि पद्मे हुं"! और एक दफा नहीं, सात बार। आप सात राउण्ड लेकर चोट मारें उस पर और हाथ बाहर कर लें, फिर सात बार सुनें – ओम् मणि पद्मे हुं, ओम् मणि पद्मे हुं, ओम् मणि पद्मे हुं—आवाज धीमी होती जायगी और सात वर्तुल उसके बन जायेंगे। ठीक आप भी मन्दिर के भीतर एक घड़े की तरह जोर से अपने भीतर चोट करेंगे—ओम् मणि पद्मे हुं। मन्दिर भी दोहराएगा। आपका रोयां रोयां उसे ग्रहण करके वापस फेंकेगा। थोड़ी ही देर में न आप रह जायेंगे न मन्दिर रह जायेगा, सिर्फ विद्युत के वर्तुल रह जायेंगे।

ध्यान रहे, ध्वनि जो है विद्युत का सूक्ष्मतम रूप है, यह भी थोड़ा ख्याल में ले लेना जरूरी है। क्योंकि अब विज्ञान भी कहता है कि ध्वनि विद्युत का एक रूप है—सभी कुछ विद्युत का रूप है। लेकिन भारतीय मनीषी की पकड़ थोड़ी सी भिन्न है। वह कहता है, विद्युत भी ध्वनि का रूप है। साउण्ड इज दी बेस, इलेक्ट्रिसिटी बेस नहीं है। इसलिए कहा है शब्द ब्रह्म! विद्युत् सिर्फ ध्वनि का ही एक रूप है। इसमें बहुत दूर तक समानता खड़ी हो गई। अभी विज्ञान कहने लगा है कि ध्वनि जो है, वह विद्युत का एक रूप है। अब ये थोड़ा सा फर्क रह गया है कि प्राथमिक कौन है? विज्ञान कहता है कि विद्युत प्राथमिक है।

लेकिन भारत की मनीषा तो कहती है कि ध्वनि प्राथमिक है। और ध्वनि की ही सघनता विद्युत है। विज्ञान कहता है कि विद्युत का एक प्रकार, ध्वनि है। इस बात की बहुत संभावना है कि शब्द ब्रह्म की खोज बहुत निकट में विज्ञान को करनी पड़ेगी। ये मन्दिर के गुम्बज के नीचे पैदा की गयी ध्वनियों का ही अनुभव हैं। क्योंकि जब ओम् की सघन ध्वनि की गयी तो साधक ने मंदिर के भीतर थोड़ी देर में जाना कि मंदिर भी मिट गया और मैं भी मिट गया हूं, सिर्फ विद्युत रह गयी। यह किसी प्रयोगशाला में लिया गया निष्कर्ष नहीं है। जिन्होंने ये कहा है, उनके पास कोई प्रयोगशाला नहीं। उनके पास तो एक ही प्रयोगशाला थी, जो उनका मंदिर था। उस मन्दिर में उन्होंने जाना है, और यह जाना है कि हम तो ध्वनि से शुरू करते हैं लेकिन अंततः विद्युत ही रह जाती है। इस ध्वनि के अनुभव के लिए मन्दिर का गुम्बज निर्मित किया गया था।

जब पहली दफा पश्चिम के लोगों को भारतीय मन्दिर देखने को मिले तो उन्हें अनहाईजीनिक मालूम पड़े। स्वभावतः खिड़की-दरवाजे ज्यादा नहीं हो सकते, एक ही रखा जा सकता था वह भी बहुत छोटा। इसका कारण था कि यह किसी भी तरह, ध्वनि जो पैदा हो रही है भीतर, उसके वर्तुल को तोड़ने वाला न बन जाय। उन विदेशियों को लगा कि ये मंदिर बिल्कुल ही अंधेरे, गन्दे और बन्द हैं जिनमें हवा भी नहीं जाती। उनका चर्च साफ-सुथरा है, खिड़कियां हैं, दरवाजे हैं, बड़ी खिड़कियां हैं, बड़े दरवाजे हैं। रोशनी भी जाती है, हवा भी जाती है पूरे हाईजीनिक हैं। मैंने कहा कि जब चाभी भूल जाती है तो कठिनाइयां खड़ी होती हैं। आज कोई नहीं कह सकता हिन्दुस्तान में, एक आदमी भी, कि हमारे मन्दिर में खिड़की क्यों नहीं है, दरवाजा क्यों नहीं है? हमको भी लगा कि सच तो है कि अनहाईजीनिक है। परन्तु कोई यह तर्क न दे सका कि इन मन्दिरों में इस मुल्क के स्वस्थतम लोग रहे हैं, इन मन्दिरों के भीतर बीमारी नहीं जाने दी गई। इन मन्दिरों में बैठा हुआ पूजा और प्रार्थना करने वाला आदमी, स्वस्थतम लोगों में रहा।

तब यह भी धीरे धीरे अनुभव में आना शुरू हुआ कि ओम् की ध्वनि का जो आघात है वह अपूर्व रूप से प्यूरीफाई करता है। विशेष ध्वनियां हैं जिनके आघात शुद्धता लाते हैं, विशेष ध्वनियां हैं जिनके आघात अशुद्धता लाते हैं। विशेष ध्वनियां हैं जो वहां बीमारियों को प्रवेश ही नहीं करने देंगी, विशेष ध्वनियां हैं जो वहां बीमारियों को निमंत्रित करती हैं। पर ध्वनि का पूरा शास्त्र खो गया। जिन्होंने कहा था, शब्द ही ब्रह्म है, उन्होंने शब्द के लिए

बड़ी से बड़ी बात जो कही जा सकती थी, वह कही। ब्रह्म से बड़ा कोई अनुभव ही नहीं था, और शब्द से गहरी उन्होंने कोई चीज नहीं जानी थी, जिसका प्रयोग किया जा सके। सारे राग, सारी रागिनियां, सारा संगीत पूर्व का है। वह शब्द ब्रह्म की ही प्रतीतियों का फैलाव है। समस्त राग, समस्त रागिनियां मन्दिरों में पैदा हुईं। समस्त नृत्य पहली दफा मन्दिरों में पैदा हुए, फिर हर जगह विकसित हुए। क्योंकि मन्दिर में ही ध्वनि का अनुभव करने वाला साधक था। उसने ध्वनियों में भेद देखे, उसने इतने भेद देखे जिसका कोई हिसाब नहीं।

अभी सिर्फ चालीस साल पहले काशी में एक साधु हुए विशुद्धानन्द। सिर्फ ध्वनियों के विशेष आघात से किसी की भी मृत्यु हो जाती थी, सिर्फ ध्वनियों के आघात से, ऐसे सैकड़ों प्रयोग विशुद्धानन्द ने करके दिखाये। वह साधु अपने बन्द मन्दिर के गुम्बज में बैठा था जो बिल्कुल अनहाइजीनिक था। पहली दफा तीन अंग्रेज डाक्टरों के सामने उसने एक प्रयोग किया। वे तीनों अंग्रेज डाक्टर एक चिड़िया को लेकर अन्दर गये। विशुद्धानन्द ने कुछ ध्वनियां कीं, वह चिड़िया तड़फड़ायी और मर गयी। और उन तीनों ने जांच कर ली कि वह मर गयी। तब विशुद्धानन्द ने दूसरी ध्वनियां की, वह चिड़िया फिर तड़फड़ायी और जिन्दा हो गयी! तब पहली दफा शक पैदा हुआ कि ध्वनि के आघात का परिणाम हो सकता है! अभी हम दूसरे आघातों के परिणाम को मान लेते हैं क्यों कि उनको विज्ञान कहता है। हम कहते हैं कि विशेष किरण आपके शरीर पर पड़े तो विशेष परिणाम होंगे। विशेष औषधि आपके शरीर में डाली जाय तो विशेष परिणाम होंगे। विशेष रंग विशेष परिणाम लाते हैं, लेकिन विशेष ध्वनि क्यों नहीं? अभी कुछ प्रयोग शालाएं पश्चिम में, ध्वनियों का जीवन से क्या सम्बन्ध हो सकता है, इसपर बड़े काम में रत हैं। कुछ दो-तीन प्रयोगशालाओं में बड़े गहरे परिणाम हुए। इतना तो बिल्कुल साफ हो गया है कि विशेष ध्वनि का परिणाम, जिस मां की छाती से दूध नहीं निकल रहा है, उसकी छाती से दूध ला सकता है। विशेष ध्वनि करने पर जो पौधा छः महीने में फूल देता है वह दो महीने में फूल दे सकता है। जो गाय जितना दूध देती है उससे दुगुना दे सकती है, विशेष ध्वनि पैदा की जाय तो। आज रूस की सारी डेरीज में बिना ध्वनि के कोई गाय से दूध नहीं दुहा जा रहा है। और बहुत जल्दी कोई फल, कोई सब्जी बिना ध्वनि के पैदा नहीं होगी। क्योंकि प्रयोगशाला में तो यह सिद्ध हो गया है, अब व्यापक फैलाव की बात है। अगर फल, सब्जी, दूध और गाय ध्वनि से प्रभावित होते हैं तो आदमी का कोई कारण नहीं है कि वह प्रभावित न हो।

स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य ध्वनि की विशेष तरंगों पर निर्भर है। इसलिए बहुत गहरी हाइजीनिक व्यवस्था थी जो हवा से बंधी हुई नहीं थी। सिर्फ हवा मिल जाने से ही कोई स्वास्थ्य आ जाने वाला है, ऐसी धारणा नहीं थी। नहीं तो यह असंभव है, कि पांच हजार साल के लम्बे अनुभव में यह ख्याल में न आ गया हो! हिन्दुस्तान का साधु बन्द गुफाओं में बैठा है जहां रोशनी नहीं जाती, हवा नहीं जाती। बन्द मन्दिरों में बैठा है। छोटे दरवाजे हैं, जिनमें से झुककर अन्दर प्रवेश करना पड़ता है। कुछ मन्दिरों में तो रेंग कर ही अन्दर प्रवेश करना पड़ता है। फिर भी स्वास्थ्य पर इनका कोई बुरा परिणाम कभी नहीं हुआ था। हजारों साल के अनुभव में कभी नहीं आया कि इनका स्वास्थ्य पर बुरा परिणाम हुआ है। पर जब पहली दफा संदेह उठा तो हमने अपने मंदिरों के दरवाजे बड़े कर लिए। खिड़कियां लगा दीं। हमने उनको माडर्नाइज किया, बिना यह जाने हुए कि वह माडर्नाइज होकर साधारण मकान हो जाते हैं। उनकी वह रिसेप्टिविटी खो जाती है जिसके लिये वह कुंजी हैं।

ध्वनि से गहरा सम्बन्ध है मन्दिर की वास्तु-कला का, आर्किटेक्चर का। वह सारा ध्वनि शास्त्र ही है। किस कोण से ध्वनि चोट की जाय, उसका हिसाब है। कौन सी ध्वनि खड़े होकर की जाय और कौन सी बैठ कर की जाय, उसका भी हिसाब है। कौन सी लेट के की जाय उसका भी हिसाब है। क्योंकि खड़े होके उसके आघात बदल जायेंगे, बैठ के उसके आघात बदल जायेंगे। कौन सी ध्वनियां साथ में की जायं तो परिणाम अलग होंगे। कौन सी ध्वनियां अलग अलग की जायं तो परिणाम अलग होंगे। इसलिए बड़े मजे की बात है कि जब वैदिक साहित्य का पश्चिम की भाषा में अनुवाद शुरू हुआ तो स्वभावतः पश्चिम में भाषा का जो जोर है वह भाषागत है, ध्वनिगत नहीं है, फोनेटिक नहीं है। कोई शब्द लिखा जाय तो वैदिक दृष्टि में उस शब्द के लिखने और बोलने का उतना मूल्य नहीं है जितना उसके भीतर वह विशेष ध्वनि और विशेष ध्वनि की मात्राओं का समाहित होना जरूरी है। संस्कृत का जोर फोनेटिक है, लिंग्विस्टिक नहीं। शब्दगत नहीं है, ध्वनिगत है। इसीलिए हजारों साल तक कीमती शास्त्रों को न लिखने की ज़िद की गयी। क्योंकि लिखते ही जोर बदल जायगा, एम्फेसिस बदल जायगी। बोल के ही दिया जाय दूसरे को, लिखके न दिया जाय। क्योंकि लिखे जाने पर शब्द बन जायेगा, और ध्वनि की जो बारीक संवेदनाएं थीं वह मर जायेंगी। उनका कोई अर्थ नहीं रह जायगा।

अगर राम को लिख दें हम, तो पढ़ने वाले पचास तरह से पढ़ सकते हैं।

कोई 'र' पर थोड़ा कम जोर दे, कोई 'अ' पर थोड़ा ज्यादा जोर दे, कोई 'म' पर थोड़ा कम जोर दे। वह कैसा जोर देगा, वह पढ़ने वाले पर निर्भर करेगा। लिखने के बाद ध्वनिगत जोर समाप्त हो जाता है। अब उसको फिर डिकोड करना पड़ेगा। इसलिए हजारों साल तक जिद थी कि कोई शास्त्र लिखा न जाय। कारण ? कारण सिर्फ एकमात्र यही था कि उसकी जो ध्वनिगत व्यवस्था है वह न खो जाय। सीधा व्यक्ति के द्वारा ही वह दूसरे को सुनाया जाय। इसलिए शास्त्र को 'श्रुति' कहते हैं, जो सुन के मिले वही शास्त्र था। जो पढ़ के मिले उसको हमने शास्त्र नहीं कहा कभी। क्योंकि उसकी सारी की सारी वैज्ञानिक प्रक्रिया थी,—कि उसमें ध्वनि के आघात होंगे, कहां क्षीण होगी ध्वनि, कहां तीव्र होगी, परन्तु उसको लिपिबद्ध करने पर कठिनाई खड़ी हो जायगी। और कठिनाई खड़ी हुई। जिस दिन लिपिबद्ध हुए ये शास्त्र, उसी दिन इनकी जो मौलिक आंतरिक व्यवस्था थी वह खण्डित हो गयी। फिर कोई जरूरत न रही कि आप किसी से सुनके ग्रहण करें। आप किताब पढ़ सकते हैं, वह बाजार में उपलब्ध है। फिर उसके साथ ध्वनि का कोई सवाल नहीं रहा।

यह भी मजे की बात है कि इन शास्त्रों का कभी जोर न था अर्थ पर। जोर ही नहीं था अर्थ पर। अर्थ पर जोर तो पीछे हमारी पकड़ में आना शुरू हुआ जब हमने उनको लिपिबद्ध किया। क्योंकि लिपिबद्ध कोई भी चीज अगर अर्थहीन हो तो हम पागल मालूम पड़ेंगे। उनको उससे अर्थ देना ही पड़ेगा। अभी भी वैदिक वचनों में ऐसे वचन हैं जिनके अर्थ नहीं लगाये जा सके। और जिनके अर्थ नहीं लगाये जा सके वही वचन असली हैं, क्योंकि वह बिल्कुल ही ध्वनिगत है। उनमें अर्थ था ही नहीं। जैसे ओम् मणि पद्मे हुं। यह एक तिब्बतन मंत्र है। इसमें सवाल अर्थ का नहीं है। 'ओम्' में भी सवाल अर्थ का नहीं है। उसमें कोई अर्थ नहीं है। ध्वनिगत चोट है। और उसके परिणाम हैं। जब कोई साधक ओम् मणि पद्मे हुं' का आवर्तन करता है बार-बार, तो उसके शरीर के विभिन्न चक्रों पर चोट पड़नी शुरू होती है। और वे चक्र सक्रिय होने शुरू होते हैं। इसमें क्या अर्थ है यह सवाल नहीं है, इसकी क्या युटीलिटी, उपयोगिता है, यह सवाल है। इसको ख्याल में ले लेना जरूरी है कि पुराने शास्त्र अर्थ पर जोर नहीं देते, उपादेयता पर जोर देते हैं—उपयोगिता क्या है, उपयोग क्या है।

बुद्ध से किसी ने पूछा है कि सत्य क्या है ? तो बुद्ध ने कहा, जो उपयोग में आये। सत्य की परिभाषा—जो उपयोग में आ सके। विज्ञान भी यही करेगा सत्य की परिभाषा। विज्ञान भी यही करता है। प्रेगमेटिक परिभाषा करेगा। वह यह

नहीं कहेगा कि सत्य क्या है, जिसको आप सिद्ध कर देंगे, यह सवाल नहीं है। सत्य क्या है, जो उपयोग में आ सके। आप उपयोग करके दिखा दें। आप कहते हैं कि हाइड्रोजन-आक्सीजन मिलकर पानी बनते हैं? हमें फिक्र नहीं है कि ये सत्य है या असत्य। आप पानी बनाकर दिखा दें तो सत्य हो जायेगा, न बन सके पानी तो असत्य है। हाइड्रोजन और आक्सीजन मिलकर पानी बनते हैं कि नहीं, यह कोई लाजिकल, कोई तर्कगत इसकी वैलिडिटी नहीं है। बनते हों तो बनाकर दिखा दें, बन जाय तो सत्य हैं, न बनते हों तो सिद्ध हो जायगा कि असत्य हैं। विज्ञान ने अब जाकर वही व्याख्या पकड़ी है सत्य की, जो पांच हजार साल पहले धर्म की व्याख्या थी। धर्म कहता था, जो उपयोग में आ जाये। जिसका आप उपयोग कर सकें। तो ओम् का कोई अर्थ नहीं है, उपयोग है; कोई मीनिंग नहीं है, यूटिलिटी है। मन्दिर का कोई अर्थ नहीं है, उपयोग है। और उपयोग में लाना एक कला है। और सभी कलाओं के साथ एक खराबी है, कि उनका जीवंत हस्तांतरण नहीं हो सकता।

इधर मैं पढ़ता था, चीन में कोई पन्द्रह सौ साल पहले एक सम्राट था। वह मांस का बहुत शौकीन है, और इतना शौकीन है कि वह अपने सामने ही गाय बैल को कटवाता है। जो उसका कसाई है, वह पन्द्रह साल से नियमित सुबह आकर उसके सामने जानवर काटता है। एक दिन वह सम्राट पूछता है कि यह तू जो फरसा लाता है काटने को, इसे मैंने तुझे कभी बदलते नहीं देखा। पन्द्रह साल हो गये, इसकी धार मरती नहीं? तो वह कसाई कहता है कि इसकी धार नहीं मरती। धार तभी मरती है जब कसाई कुशल न हो। धार तभी मरती है जब कसाई को पता न हो कि कहां ठीक जगह है, जहां कि फरसा आर-पार हो जाता है और दो हड्डियों के बीच में नहीं आता। यानी ज्वाइंट्स कहां हैं? यह मेरी पुश्तैनी कला है। इस फरसे की धार सिर्फ मरती ही नहीं, बल्कि रोज जानवर काटके इसकी धार और तेज हो जाती है। उस सम्राट ने कहा, क्या तू यह कला मुझे भी सिखा सकता है? कसाई ने कहा कि यह बहुत कठिन है। यह तो मैं अपने बाप के पास, जबसे मुझे होश है, तबसे मैं खड़ा रहा और इसको मैंने इम्बाइब किया है, इसको मैंने सीखा नहीं। इसको मैं पी गया हूं, इसको मैंने सीखा नहीं किसी से। मैं बाप के पास खड़ा रहता था। रोज रोज यही हो रहा था, दिन में जानवर कट रहे थे, मैं पास खड़ा रहता था। कभी उसका फरसा उठाकर लाता था, कभी जानवर के कटे हुए अंगों को उठाकर रखता था। बस मैं पी गया। अगर तुम भी राजी हो तो मेरे पास खड़े रहो, कभी

उठाकर लाओ, कभी रखो, कभी बैठो, कभी देखते रहो, इसको पी सको ! वह मैं सिखा नहीं सकता।

साइंस सिखायी जा सकती है, आर्ट्स सिखाया नहीं जा सकता। विज्ञान हम सिखा पाते हैं, पढ़ा सकते हैं। कला हम सिखा नहीं सकते, कला को तो इम्बाइब करना पड़ता है। ये सारे मंत्र अर्थ नहीं रखते। इनका कलात्मक उपयोग है। छोटे छोटे बच्चों को हम इम्बाइब करवा देते थे। वह मंदिर की कला सीख जाते थे। उन्हें कभी पता भी नहीं चलता था कि वे क्या सीख गये। वह मंदिर में जाने की कला सीख जाते थे। वह मंदिर में बैठने की कला सीख जाते थे, वह मंदिर का उपयोग सीख जाते थे। जब भी मुसीबतें गहरी होती थीं वे भागे मंदिर चले जाते थे। मंदिर से वे शांत होकर लौट आते थे, चूकना मुश्किल था। रोज सबेरे वे मन्दिर चले आते थे क्योंकि जो मन्दिर में मिलता था वह कहीं भी मिलना मुश्किल था। पर वह इतने बचपन से पकड़ी थी बात कि उन्हें कभी सिखाया, ऐसा नहीं—इम्बाइब्ड कर गये वे, पी गये। बहुत सी चीजें हैं जो सिखायी नहीं जा सकतीं। जहां भी कला है वहां सिखाना मुश्किल है।

इस मन्दिर की, इन मन्दिरों के बीच ध्वनि की जो सारी की सारी संयोजना थी, उसकी एक प्रायोगिक व्यवस्था है। और जबतक शब्द का ठीक ध्वनिगत रूप ख्याल में न हो, उसका कोई मतलब नही होता। जैसे मंत्र है; हमारे यहां गुरू के द्वारा ही दिया जाय, इसपर जोर था। वह मंत्र आप जानते रहे हैं सदा। हो सकता है गुरू आपके कान में कहे, राम राम का पाठ करो और आप हैरान होंगे और कहेंगे कि यह क्या, यहीं मंत्र, और गुरू के बिना मंत्र नहीं मिलेगा? यह तो दुनिया जानती है कि राम राम कहो, और इस आदमी ने कान में कहा कि राम राम कहो। यह तो पागलपन की बात है। नहीं, लेकिन राम के ध्वनिगत रूप पर जोर होगा। जो कि दुनिया नहीं जानती। और राम के भी पचासों प्रयोग हैं।

बाल्मीकि की सारी कथा हमने सुनी है लेकिन वह कथा बचकानी हो गयी। ऐसी कथा हो गयी कि हम समझने लगे कि बाल्मीकि नासमझ था, गैर पढ़ा-लिखा था, गंवार था। वह भूल गया कि गुरू ने कहा था कि 'राम राम'का पाठ करना, तो वह 'मरा मरा'का पाठ करने लगा और 'मरा मरा' का पाठ करते हुए ज्ञान को उपलब्ध हो गया। ये चाभियां जब खो जाती हैं तो ऐसी गड़बड़ खड़ी हो जाती है। सच बात यह है, राम के मंत्र के एक रूप का यही हिस्सा है, कि 'राम राम'

कहते कहते जब आपके भीतर से 'मरा मरा' निकलने लगे तभी वर्तुल बना। राम राम गति से कहते हुए, जब बिल्कुल स्थिति उल्टी हो जाय और मरा मरा निकलने लगे, तब ठीक ध्वनिगत हो गया। और जब मरा मरा निकलेगा तब एक अद्‌भुत घटना घटती है। और वह घटना यह है कि आप नहीं रहे, आप मर गये। और जब आप मर गये होते हैं, वही क्षण आपके जप के पूरे होने का है। वही क्षण अनुभव का है, जब आप नहीं हैं, मिट गये। और यह बड़े मजे की बात है कि अगर यह प्रक्रिया ठीक से की जाय, तो राम का पाठ आप शुरू करेंगे, बहुत शीघ्र वह घड़ी आ जायेगी जब राम की जगह 'मरा मरा' निकलने लगेगा और आप चाहेंगे भी कहना कि राम कहूं तो न कह पायेंगे। सारा व्यक्तित्व मरा मरा कहेगा। उस वक्त आपकी मृत्यु घटित होगी जो कि ध्यान का पहला चरण है। और जब आपकी मृत्यु पूरी घटित हो जायेगी तो आप अचानक पायेंगे कि मरा मरा, राम में रूपांतरित होने लगा। फिर आपके भीतर से राम की ध्वनि निकलनी शुरू होगी। और जब राम की ध्वनि अब निकलेगी आपके भीतर से, तब आपको राम का साक्षात्कार होगा, इसके पहले नहीं होगा। बीच में मरा की ध्वनि में रूपांतरण अनिवार्य है। इसके तीन हिस्से हुए। राम से आप शुरू करेंगे, मरा में आप मिटेंगे, और राम पर फिर पूरा होगा। और जब तक बीच में मरा-मरा की प्रक्रिया पकड़ न ले आपको, तबतक असली राम की प्रक्रिया, जो तीसरे चरण में पूरी होने वाली है, वह नहीं होगी। अगर आप राम राम कहते ही गये, और मरा मरा नहीं आया बीच में, तो आपको पता ही नहीं है,– उसके फोनेटिक एमफेसिस का पता ही नहीं है। उसका ध्वनिगत जो जोर है उस जोर को अगर ठीक से आपने दिया––जैसे अगर आपने 'र' जोर से कहा, 'म' धीमे कहा तो ही 'मरा' बनेगा, नहीं तो नहीं बनेगा। 'र' पर सारी ताकत लग जायगी और 'म' को ढीला छोड़ दिया तो 'म' गड्ढे की तरह हो जायगा। 'र' शिखर की तरह हो जायगा। 'र' एक उत्तुंग चोटी हो जायगा और 'म' एक खाई हो जायेगा। और इस स्थिति में, राम में 'म' को छोटा करते आप चले जायें, तो बहुत शीघ्र आप पायेंगे कि रूपांतरण हुआ। 'म' शिखर बन जायेगा और 'र' खाई बन जायेगा। और 'मरा' शुरू हो जायेगा।

जैसे लहरे हैं, हर शिखर के बाद खाई और हर खाई के बाद शिखर! अभी जो शिखर था वह कुछ देर में खाई हो जायेगा, जो खाई थी फिर शिखर बन जायेगी। ठीक लहर की तरह। ध्वनि की भी लहरें हैं। ठीक ध्वनि के भी

उतार-चढ़ाव हैं, आरोह-अवरोह हैं। तो ठीक ध्वनि की व्यवस्था अगर ज्ञात न हो तो आप राम राम कहते हैं, कोई परिणाम नहीं होगा। अब जिन्होंने ही बाल्मीकि के संबंध में यह कहानी प्रचलित की थी कि वह नासमझ था, वह पढ़ा-लिखा न था, वह गंवार था, यह सब बातें सत्य हैं कि वह नासमझ था, वे पढ़ा-लिखा था, गंवार था, लेकिन यह बात सच नहीं है कि इसलिए वह मरा मरा कहने लगा। जहां तक इस सूत्र का संबंध है, इस मामले में तो वह पूरा होशियार था, उसे ठीक, पूरे गणित का पता था। इतने मामले का तो उसे पूरा पता था कि 'राम' कैसे कहना है कि 'मरा' बन जाय। जब मरा बन जाय तभी आप संक्रमण से गुजरे और फिर राम पैदा होगा। वह राम आपके द्वारा कहा हुआ राम नहीं होगा। फिर आप तो मर गये। वह राम जन्मेगा आपके भीतर, वह अजपा हो जायेगा। आप उसका जाप नहीं कर रहे, वह हो रहा है जाप।

ध्वनिगत जोर की वजह से श्रुति है। और उसे कोई जानने वाला, जो ध्वनियों को जानता हो, वही व्यक्ति उसे किसी को दे, तो ही उपयोगी होगा। वही शब्द होंगे, जो किताब में लिखे होंगे, सबको मालूम होंगे, फिर भी उनका गणित अलग हो जायेगा। और गणित में ही सारा खेल है। ध्वनि का जो गणित है, आरोह-अवरोह के जो अन्तर हैं, उनका ही सारा खेल है। तो एक पूरा मंत्र शास्त्र था, और मंदिर उन की एक प्रयोगशाला थी। यह उसका आंतरिक मूल्य था, साधक का। और मंदिर में जितने लोगों को परमात्मा का अनुभव हुआ, मन्दिर के बाहर नहीं हो सका—यह जानते हुए कि परमात्मा मन्दिर के बाहर भी है। वह अनुभव आज मन्दिर में भी नहीं हो रहा है। लेकिन मन्दिर के भीतर जितने लोगों को अनुभव हुआ उतने लोगों को कभी मन्दिर के बाहर नहीं हुआ। या जिन लोगों को मन्दिर के बाहर प्रयोग करने पड़े—जैसे महावीर, तो फिर उनको, जो मन्दिर में हो रहा था, उसके अलावा दूसरा उपकरण खोजना पड़ा जो ज्यादा जटिल है। महावीर को उन आसनों को साधना पड़ा वर्षों तक, जिनसे कि वर्तुल भीतर बन जाय। वह जो मन्दिर का सहारा था वह न लिया जाय। लेकिन वह वर्षों की प्रक्रिया है, और महावीर जैसे संकल्पी के लिए ही संभव है। बाकी अति कठिन हो जायेगी। बुद्ध ने भी मन्दिर का सहारा नहीं लिया। लेकिन महावीर के मरने के थोड़े दिन बाद ही मन्दिर बनाना शुरू करना पड़ा, और बुद्ध के मरने के बाद भी बनाना शुरू करना पड़ा। क्योंकि जो मन्दिर दे सकता है बिल्कुल सामान्य जन को, वह बुद्ध और महावीर नहीं दे सकते। बुद्ध और महावीर जो कह रहे हैं करने को, वह सामान्य जन नहीं कर पायेगा।

आज तो अगर हम इस विज्ञान को पूरा समझ लें तो मंदिर से भी श्रेष्ठतर उपकरण खोजे जा सकते हैं। अभी इस पर थोड़ा काम भी चलता है। मंदिर से भी श्रेष्ठतर उपकरण इसलिये खोजे जा सकते हैं अब, कि अब हम विद्युत के संबंध में ज्यादा जानते हैं। परंतु इस तरह के बहुत से प्रयोग, खतरे में भी ले जा सकते हैं, भयानक भी हैं। लेकिन ठीक उपयोग किया जाय तो जो मंदिर करता था, उसकी हम साइंटिफिक व्यवस्था कर सकते हैं। क्योंकि मंदिर में जो वर्तुल पैदा होता था वह वर्तुल अब और तरह से भी पैदा किया जा सकता है। आप जेब में छोटासा यंत्र भी रख सकते हैं कल, जो आपके भीतर विद्युत का वर्तुल बना सके। आप उस विद्युत के यंत्र में उन ध्वनियों को भी रेकार्डेड रख सकते हैं जो आपके भीतर ध्वनियों का वर्तुल बना दे। अभी इसपर कुछ काम चलता है। बहुत हैरानी का काम है।

अमरीका में कोई सात-आठ वैज्ञानिक बहुत अद्भुत काम में लगे हुए हैं। वह काम यह है कि हमारे जितने सुख-दुख के अनुभव हैं, सभी हमारे शरीर के किन्हीं केन्द्रों पर विद्युत के प्रवाह के अनुभव हैं, और कुछ भी नहीं। जैसे, आपके अगर शरीर में सुई चुभाई जाय, पूरे शरीर में, तो सब जगह आपको सुई की चुभन पता नहीं चलेगी। कुछ डेड स्पाट्स हैं आपके शरीर में, जहां आपकी पीठ में हम सुई चुभाते रहेंगे और आपसे पूछेंगे, सुई चुभ रही है? आप कहेंगे नहीं। किसी की भी पीठ में सुई चुभाकर आप दस-बीस जगह देखें तो आपको दो-चार डेड स्पाट मिल जायेंगे। जहां आप चुभायेंगे और वह कहेगा चुभ नहीं रही है। ठीक वैसे ही दस-पांच ऐसी जगहें हैं जहां आप जरा ही चुभायेंगे, वह कहेगा बहुत चुभ रही है। ठीक ऐसा ही मस्तिष्क का मामला है। मस्तिष्क के सेंस की बहुत सी ग्रंथियां हैं, लाखों की संख्या में। और प्रत्येक ग्रंथि का अनुभव है। जब आप कहते हैं, मुझे सुख हो रहा है तब आपके मस्तिष्क की किसी खास ग्रंथि में से विद्युत बहती है। समझें, अपनी प्रेयसी के पास बैठे हैं। उसका हाथ, हाथ में लिये है और कहते हैं मुझे सुख हो रहा है। जहांतक वैज्ञानिक का संबंध है वह आपकी खोपड़ी में बतायेगा कि फलां जगह से विद्युत बह रही है। और इस स्त्री के साथ सिर्फ दिमाग का एसोसिएशन है आपका, कि इसके पास बैठने से सुख मिलता है। तो उस सहयोग, साहचर्य की धारणा की वजह से खास बिन्दु से आपकी धारा बहनी शुरू हो जाती है। लेकिन दो-चार महीने बाद नहीं मिलेगा सुख। क्योंकि किसी बिन्दु से अगर आपने बहुत ज्यादा विद्युत की धारा बहायी तो वह इनसेंसिटिव हो जाता है। उसकी संवेदन-

शीलता मर जाती है। जैसे एक जगह हम कांटा चुभाये जायं बार बार, तो आज जितना दर्द आपको होगा, कल नहीं होगा, परसों और नहीं होगा। हम चुभाये चले जायं तो वह जगह ग्रंथि बना लेगी, कांटे को झेल जायेगी, और दर्द बिल्कुल नहीं होगा। जो लोग सितार बजाते हैं तो उनकी उंगली कट जाती है। पहले बहुत तकलीफ होती है, फिर बजाते ही चले जाते हैं तो उंगली संवेदनहीन हो जाती है। फिर कितने ही तार-वार खींचे जायें, कोई उंगली को पता नहीं चलता। तो आपका जो प्रेम क्षीण हो जाता है कि तीन महीने के बाद प्रेम क्षीण हो गया, बड़ा कच्चा प्रेम था, —उसका और कोई कारण नहीं है। जिस बिन्दु से आपका सुख का प्रवाह हो रहा था वह आदी हो गया। यही स्त्री दो-चार दस साल आपसे छूट जाय तो फिर सुख दे सकती है।

यह जो वैज्ञानिकों का काम है इसमें अभी तो उनके जो प्राथमिक प्रयोग थे, वह पशुओं पर थे। चूहों पर अभी उनका एक प्रयोग चलता था जिसने उनको भी घबड़ा दिया। चूहा जब संभोग में रत होता है तो उसके मस्तिष्क को उन्होंने खोल के रखा। खिड़की खुली थी उसके मस्तिष्क की ताकि उसके पूरे मस्तिष्क की जांच हो सके कि जब वह संभोग में जाता है, जब उसका वीर्य क्षरण होता है, तो उसके मस्तिष्क में कहां से विद्युत बहती है? जब उसके मस्तिष्क की विद्युत की एक किरण पकड़ ली उन्होंने कि यहां से बहती है, तब वहां उन्होंने इलेक्ट्राड लगा लिया। मस्तिष्क बन्द कर दिया और इलेक्ट्राड से जुड़े हुए तार की एक मशीन लगा दी। उस मशीन से उसी मात्रा की, उसी अनुपात की विद्युत बहेगी, जितने अनुपात की विद्युत उसके वीर्य क्षरण में बहती थी। और सामने उसके बटन लगा हुआ है। उस चूहे को बटन दबाना एक दफे बता दिया, कि जैसे बटन दबाया उसे वही आनंद आया, जो उसको संभोग में आया था। आप हैरान होंगे कि चूहे ने फिर कोई काम ही नहीं किया चौबीस घण्टे तक। एक घण्टे में छः छः हजार बार वह बटन दबाता रहा। खाना-पीना बन्द उसका, और जब तक इलेक्ट्राड काट नहीं दिया उसका, तबतक न खाया, न पिया, न सोया, न इधर उधर देखा, बस वह एक ही काम – पूरे चौबीस घंटे, सतत! थक के गिर पड़ा वह बिल्कुल, लेकिन वह थकते वक्त तक उसको दबाये चला गया। वह वैज्ञानिक जो उसपर प्रयोग कर रहा था, उसका कहना है कि उस चूहे ने जितना संभोग का रस जाना आज तक पृथ्वी पर किसी चूहे ने नहीं जाना। हालांकि संभोग वह कर नहीं रहा था। सिर्फ उस जगह से विद्युत प्रवाहित थी। उस वैज्ञानिक का दावा है कि बहुत जल्दी ही सेक्स बहुत साधारण सुख रह जायगा जिस दिन हम आदमी

को इलेक्ट्राड दे देंगे। तब ऐसा आदमी खोजना मुश्किल होगा जो सेक्स के लिए राजी हो जाय। क्योंकि बहुत शक्ति गंवा के कुछ खास पाता नहीं। हम उसके खीसे में एक बैटरी से लगा छोटा सा यंत्र दे सकते हैं, वह अपने खीसे में जब भी चाहे दबा ले बटन—सरसराहट फैलेगी, जो कि सेक्स में फैलती है। पर यह खतरनाक भी है। क्योंकि एक बार मनुष्य के मस्तिष्क की सारी व्यवस्था का पता चल जाय तो उसमें कौन सा हिस्सा संदेह करता है वह काटकर फेंका जा सकता है, कौन सा हिस्सा क्रोध करता है वह अलग किया जा सकता है—या उसके सारे सम्बन्ध तोड़े जा सकते हैं। उससे आपके शरीर की विद्युत न जुड़ पाये तो फिर आप क्रोध नहीं कर पायेंगे। कौन सा हिस्सा बगावती है, उसके सारे संबंध, उसके सारे तार, डिस्कनेक्ट किये जा सकते हैं। सरकार उसके खतरनाक उपयोग कर सकती है।

लेकिन मनुष्य को सुख देने की दिशा में भी उनसे बहुत उपयोग नहीं हो सकते हैं। उनको तो पता नहीं है लेकिन मैं मानता हूं कि हम मनुष्य को मन्दिर भी दे सकते हैं उस व्यवस्था से। वह और भी सरल होगा, इस मन्दिर से भी सरल होगा। इस मंदिर में आपको घण्टों, महीनों, वर्षों ध्वनि का जो आघात पैदा करके ध्वनि जब वापस आप पर लौटेगी और आपके मस्तिष्क से टकरायेगी तो जो स्थितियां बनायेगी, वह स्थितियाँ और भी सरलता से पैदा की जा सकती हैं। तो मन्दिर मेरे हिसाब से एक बहुत वैज्ञानिक प्रक्रिया थी जो ध्वनि के माध्यम से आपके भीतर सुखद, शांतिदायी, आनंददायी और प्रीतिकर भाव को जगाने का अद्भुत काम करती रही। और उस भाव की उपस्थिति में आपका जीवन के प्रति पूरा दृष्टिकोण बदलता जाता। वैज्ञानिक जो कर रहे हैं उसमें खतरे हैं। खतरा एक ही है कि विज्ञान जो भी करता है वह टैक्नोलाजिकल हो जाता है। तकनीकी हो जाता है। चेतना की उसमें बहुत जरूरत नहीं रह जाती। हो सकता है कि ठीक मंदिर जैसी स्थिति भी विद्युत के प्रभाव से पैदा कर दी जाय, लेकिन चेतना के जो चारित्रिक परिवर्तन होते थे वह न हो सकेंगे। जो चेतना को ऊंचाइयां मिलती थीं, जो रूपांतरण, ट्रांसफर्मेशन होता था, वह न हो। आदमी को बटन दबाने से जो मिल जायगा उससे कोई मूल रूपांतरण नहीं हो सकते। वह उपकरण होंगे। इसलिए मंदिर की जरूरत समाप्त होगी, ऐसा मैं नहीं मानता हूं।

(शेष आगामी अंक में)

एक संन्यासी जेल में

• मां योग यशा

'निश्चित ही विचार करेंगे हम' एक महाशय प्रस्तावना की शुरुआत ही कर रहे थे कि उनकी बात को बीच में ही काटकर दूसरे महोदय उबल पड़े और लड़कियों को उठा ले जाने के आरोप में आचार्यश्री के विरुद्ध कोर्ट में फरियाद करने की सलाह दे गये। कुछ समाजमान्य साधु 'व्यवस्था और सुविधा के अभाव में मैं उल्टे पैर लौट आऊंगी' – इस अपेक्षा में मेरी ओर उपेक्षा करने का इन लोगों को उपदेश दे चुके थे; और कुछ धर्म के ठेकेदार समाज की टूटती कड़ियों को फिर से संभल जाने के लिये और मुझे अपने 'संन्यास की सजा' देने के लिये संगीनों से मौत की धार उतार देने की सोच रहे थे। कुछ अहिंसक पुत्र 'लड़की आयी है घर, फिर चली न जाय' इस खातिर स्वयं उपोषण की तैयारी में थे, तो कुछ हितचिन्तक झटपट मेरी डॉक्टर या वकील से शादी रचाके समस्या से छुटकारा पाने की कोशिश में थे। कुछ सिरफिरे संन्यास के प्रति और आचार्यश्री के प्रति अंटसंट कहकर अपने मन की संतुष्टि कर ले रहे थे, तो कुछ तटस्थ व्यक्ति चुप्पी साधे बैठे थे। और कई धर्मोपासक पैसों के जोरपर 'पागल हो गई है' का सर्टिफिकेट डॉक्टर से लिखवाकर मुझे पागलखाने में भेज देने का आग्रह भी कर रहे थे।

पिताजी बड़ी दुविधा में थे— एक तरफ बेटी की जिन्दगी और उसकी साधना करने की तमन्ना, तो दूसरी तरफ परम्परा की टूटती कड़ियाँ और समाज की क्रोधभरी प्रतिक्रिया।

मां, ये सब बातें सुन फूट-फूट कर रो रही थी और मैं ऊपर कमरे में बैठी चुपचाप सब सुने जा रही थी। सुरक्षा की दृष्टि से माँ मुझे रात के समय पूना से घर ले आयी थी। पर दूसरे ही दिन "संन्यासी" को सजा देने सारे सुश्रावक सज्ज थे। अपराध यही था मेरा कि जिसकी ओर देखकर उनकी आँखें चौंधिया गयी थीं उस तेजपुंज की छत्रछाया में मैं जैन संन्यास की यात्रा छोड़कर अभिनव संन्यास की यात्रा पर थी। 'जरूर हम विचार करेंगे। यूं ही न छोड़ेंगे उसे' कहकर वे सब अपने अपने घर पधारे। सूर्य भी इन समाज के तथाकथित कर्णधारों के सुकृत्यों को देखने को राजी न था और क्षोभ तथा क्रोध से आरक्त अस्ताचल की ओर तेजी से बढ़ा चला जा रहा था। सभी महानुभाव ऊपर कमरे में पहुंच गये थे मेरे पास। पिताजी को चिन्ता थी कि कहीं ये लोग मेरी पिटाई न करदें। पर जिन्दगी जिस चुनौती के केन्द्र पर खड़ी थी उसी केन्द्र को एक अद्‌भुत मानसिक शान्ति की परिधि भी संवारे खड़ी थी उस रजनी की बेला में। क्या वह रजनीश की अमृतवृष्टि नहीं थी ?

अन्त में मौन तोड़ते हुए एक मध्यस्थ महोदय ने सब को रोकते हुए शुरुआत की कि 'निश्चित ही तुम्हारे हाल पर विचार करेंगे हम, पहले यह बतलाओ— दमन के अलावा कौन-सी साधना है दुनिया में ? और आचार्य रजनीश कहते हैं कि दमन मत करो। क्या यह ठीक है ?' मैंने कहा— यह ठीक है या नहीं जरा अपनी जिन्दगी से पूछ लेना। दिन में कई बार आप क्रोध कर लेते हैं और फिर पश्चाताप भी कर लेते हैं। इस पश्चाताप से शान्ति की तरफ कितने कदम उठे हैं अबतक ? जरा भीतर झाँक लेना। क्रोध आत्मा की वैभाविक शक्ति की अभिव्यक्ति है अतः यह एक भोग है। और समाज, शास्त्र आदि से मिले संस्कारों से मन के साथ समझौता करने के लिए पश्चाताप भी कर लेते हैं– यह दमन है। अब एक तीसरा कोण भी है जहाँ ज्ञाता और द्रष्टा की भूमिका में खड़ा होना है। उन सज्जनों में कुछ सोहनगढ-पंथी भी थे। मैंने कटाक्ष करते हुए उनसे कहा : आपके गुरुजी के ख्याल में भी यह बात न आयी होगी। (चोट शायद गहरी लगी थी, पर मेरा मन चोट की फिकर कर रुकने को राजी न था।) साधना के नाम पर आप चल तो बहुत लिये हैं, पर क्या आप अपने को वहीं नहीं पाते अब भी, जहाँ से चलना शुरू हुआ था ? हे महानुभावो, आप कोल्हू के बैल के जीवन को मुझपर लादकर मुझसे कौन-सी साधना करवाना चाहते हैं ?

तभी एक सुश्रावक आजीवन संथारा (अन्न-पानी का त्याग) की साधना करने का उपाय सुझा रहा था। जीते-जी तो नहीं, पर मरने के बाद मुझे स्वर्ग देने की व्यवस्था हो रही थी उसके दिमाग में। इस महंगे समझौते में वह टिक नहीं पाया तो एक हितचिंतक हमें संभालते हुए बोले– नहीं, ऐसी बात नहीं है,– अबतक तुम जो

साधना करती आयी हो वही चालू रखो यहाँ। हम तुम्हें सब सुविधाएं देंगे। मैंने कहा— आजतक वैरागी के रूप में अभिनय का अभ्यास ही तो होता रहा मुझसे। इस अभिनय से आप भले ही खुश हैं पर मैं...। अब जब मुझे साधना में जीने का मौका मिला है तो अभिनय की क्या है जरूरत ? हां, अगर सीधे केन्द्र को छूनेवाली कोई साधना हो आपके ख्याल में तो जरूर मार्गदर्शन करें। पर ज्योंही उस सहृदयी ने कहा— "इसके लिए तो हम अनधिकारी हैं" तो लोगों ने उन्हें लाल-लाल बड़ी आँखों से देखना शुरू किया और इस तरह अपने ही एक व्यक्ति के कारण बनी बनायी योजनाओं को फिसलते देखकर दो-तीन स्थितिसूचक सदस्य उस सत्यवक्ता को उठाकर कमरे से बाहर हो गये।

इसी बीच मेरे चाचा आदि दो-तीन श्रावकों ने, जो अभी तक आग उगलने के अवसर की खोज में थे, बागडोर संभाली—"बेशरम हमने कभी सोचा भी न था कि तू ऐसा काम करके हम सब को डुबायेगी। तेरे संन्यास और भजन-कीर्तन की फैली अफवाहों से हम लोगों को बाहर मुंह दिखाना मुश्किल हो गया है।" तो दूसरे ने साथ दिया— "कितने लोग यहाँ रो रो के जाते हैं कि मंगला को क्या हो गया है? समाज का दिल न दुखा" कहकर वे रो पड़े थे। फिर तीसरे महोदय बोले, "साधु-संतो के पास भी तो बड़े कार्य क्षेत्र, मिल जाते हैं, यहाँ ही ऐसा कौन सा धन तुम्हें मिल जायेगा ?" कहकर पछताने का अभिशाप दिये जा रहे थे। कटघरे के इस अपराधी के पास सिवाय हंस देने के क्या जबाब था। मेरे उद्धार की उनको इतनी तीव्र आतुरता थी कि वे कैसे समझ सकते थे कि इस सरिता को सागर मिल गया है, अब सरोवर की प्यास नहीं रही।

इसी समय अवसर देखकर वे बाहर गये और दूसरे तीन सज्जनों ने आ कर अपना अपना आसन संभाला। उनमें से एक ने, जिनसे मेरी आते समय रास्ते में भेंट हुई थी और पूछने पर जिन्होंने जबाब दिया था, 'तुम्हें घर में लेने या न लेने का विचार करेंगे हम' – बड़े जोश से मुझे अपनी बेटी घोषित कर मेरे नाम ३० हजार रुपये देने का वादा किया, पर शर्त यह थी कि सब छोड़ दूं।

उनकी हिंसा और कोई उपाय न देखकर व्यक्तित्व हनन की सूक्ष्म हिंसा पर उतर आयी थी। धर्म का भी दाम से मूल्यांकन करने वाले ये लोग अब पैसों से आचार्यश्री की प्रेरणा से जगी संकल्प-शक्ति का, उनके सान्निध्य में मिली आनन्दानुभूति का और उनकी निष्काम प्रीति का मुझसे सौदा कर रहे थे। आह ! कैसे बतलाऊं अपने हृदय की पीड़ा !

इस सौदे के लिये मेरी तैयारी न देखकर अन्त में क्रोधित हो उन्होंने 'अभिनव संन्यास' की किताब फाड़ डाली। पर क्या उनकी यह चोट उस तेजस्वी व्यक्तित्व से

झरती जीवनदायिनी किरणों का सहारा ले जनजन के मानस में अपने सहज सौन्दर्य में खिलते संन्यास के सुमन तक पहुंच भी सकती है ?

अन्त में थककर इन लोगों ने पिताजी पर यह मामला सौंप दिया –'तुम और तुम्हारे पालक कर लो समझौता। तबतक के लिये कमरे में बंद रहोगी ।'

फिर क्या था, शुरू हुई नज़र कैद दूसरे दिन से । न कहीं जाना, न किसी से मिलना । इन सब बातों से तंग आकर माँ जब मुझे कह देती थी कि तेरा-मेरा कोई रिश्ता नहीं, घर में फिर कभी पैर मत रखना, –यह सुन जो रो पड़ती थी वही मेरी छोटी बहन सहेलियों के पूछने पर मेरे बारे में 'पड़ोसी की रिश्तेदार है, संन्यासी है, घर आ गयी थी' कह अपना पिंड भी छुड़ा लेती थी ।'

भोजन छूट सा गया था । बारबार पूना के प्रवचन और भजन - कीर्तन के आनन्द के लिए दिल तड़प उठता था ।

इधर मित्रद्रोह, समाजद्रोह धर्मद्रोह का आरोप लगाकर ये लोग पिताजी को तंग करते थे कि देखो– लड़की तुम्हारे हाथ में है, अगर गयी तो हम सब सम्बन्ध तोड़ लेंगे तुमसे ।

अजीब हालत थी ।

मुझसे किये गये आदर का फायदा और मुझे दिये गये प्यार का बदला तो नहीं ले रहे थे ये लोग ? कुछ दिनों के बाद मैंने लोगों को बुलाकर कहा– आपमेंसे कई लोगों ने अपने को मेरे पिता के रूप में घोषित किया है, अतः यह मामला मेरे अकेले जन्मदाता पर सौंप देना ठीक नहीं है, और फिर आप लोगों की बड़ी कृपा है जिसकी खातिर मेरे और पिताजी के सम्बन्ध टूटने को हैं । इससे भी आपके मन का समाधान न होता हो तो मेरा आखिरी फैसला है कि मैं यहाँ नहीं रहूँगी । अगर आपको मान्य न हो तो जिसकी भी हिम्मत हो वह धर्मयज्ञ में इस पशु को बलि चढ़ाके पुण्यभागी बने । पर आप अपना निर्णय जरूर जल्दी क्रियान्वित करें । बहुत कहा-सुनी होने के बाद उन्होंने कहा–'ठीक है, हम विचार करेंगे ।'

आचार्यश्री के दर्शन के लिये मन मचल उठा था । फिर एक दिन किसी को भी पूर्वसूचना दिये बिना मैं अरुणोदय की बेला में पूना पहुंच गयी थी । मुझे मेरा जीवन-स्वर्ग, सर्वस्व मिल गया था ।

वहाँ कभी-कभी मेरे कानो में उनकी ध्वनि गूंज उठती थी–'निश्चित ही विचार करेंगे' पर अब उसका क्या उपयोग ?

पिंजरे से पंछी उड़ गया था, मुक्तमन से चिदाकाश की यात्रा पर, आचार्यश्री के श्रीचरणों में सदा-सदा के लिए विश्राम पाने को ! ●

संन्यासी बादशाह
संपन्न व्यक्ति गुलाम....यह कैसे?

अपरिग्रह

(इस संदर्भ में वार्ता है कि महावीर संन्यास के जीवन में आकर बादशाह हो गये और उनके बड़े भाई सम्पन्नता के बीच रह कर भी विपन्न व गुलाम ही रहे। इस प्रसंग की सार्थकता के बारे में प्रकट की गई जिज्ञासा का आचार्यश्री द्वारा किया गया समाधान)

महावीर सब छोड़कर चले गये। इसलिये नहीं कि वह समृद्धि थी, बल्कि इसलिये कि वह समृद्धि नहीं थी। महावीर सब छोड़ कर चले गये— इसलिये नहीं कि वहां कुछ छोड़ने योग्य था, बल्कि इसलिये कि वहां कुछ भी पकड़ने योग्य न था। लेकिन हमें दिखाई पड़ता है कि उन्होंने महल छोड़ा, हमें दिखाई पड़ता है कि हीरे-जवाहरात छोड़े, हमें दिखाई पड़ता है कि धन-दौलत छोड़ी। यह हमें दिखाई पड़ता है। किन्तु महावीर ने तो कंकड़-पत्थरों के अतिरिक्त कुछ भी नहीं छोड़ा। हीरे-जवाहरात हमें दिखायी पड़ते हैं, महावीर को हीरे-जवाहरात में कंकड़ पत्थर दिखायी पड़ते हैं। ऐसे हीरे-जवाहरात में कंकड़-पत्थरों के अतिरिक्त कुछ है भी नहीं।

जिन्होंने महावीर की कथा लिखी है उन्होंने लिखा है कि इतने हीरे इतने, जवाहरात इतने माणिक, इतने मोती छोड़े। अगर कोई महावीर से पूछे तो वह कहेंगे—बड़े पागल हो, कंकड़-पत्थरों के भी अलग अलग नाम रख लिये हैं। हां, अगर महावीर ने कंकड़-पत्थर छोड़े होते, तो हम भी नहीं कहते कि कंकड़-पत्थर छोड़ रहे हैं। हम सबने छोड़े हैं। सभी बच्चे कंकड़-पत्थर इकट्ठे करते हैं और फिर एक दिन बच्चे नहीं रह जाते और कंकड़-पत्थर छोड़ देते हैं। लेकिन किसी बच्चे की जिन्दगी में हम नहीं लिखते कि इस बच्चे ने कंकड़-पत्थर छोड़े। क्योंकि हम जानते हैं कि वे कंकड़-पत्थर हैं। जिस दिन हम जानेंगे कि महावीर ने कंकड़-पत्थर ही छोड़े, उस दिन हम न कहेंगे कि उन्होंने कुछ छोड़ा। नहीं, आश्चर्य यह नहीं है कि महावीर ने क्यों छोड़ा? आश्चर्य यह है कि दूसरे क्यों नहीं छोड़ पाते हैं! महावीर से कोई पूछे तो वह नहीं कहेंगे कि मैंने कुछ त्यागा, क्योंकि त्यागी तो वह चीज जाती है जिसका कोई मूल्य हो। महावीर कहेंगे कि मैंने कुछ भी नहीं त्यागा, क्योंकि जिस का कोई मूल्य नहीं था उसके त्याग की बात करनी ही व्यर्थ है। आप रोज अपने घर के बाहर कचरा फेंक देते हैं। अखबार में खबर नहीं छपती कि आज इतना कचरा त्यागा। महावीर के लिए जो कचरा हो गया है उसे त्यागा। यह हक तो उन्हें देना चाहिए न, कि इतना भी हक उन्हें देने को हम राजी नहीं। हां, हमें दिक्कत है, हमें वह कचरा नहीं दिखायी पड़ता। एक बच्चे से कंकड़ लेलो तब आपको पता चल जायगा। वह रात भर रो सकता है, सपने में चीख सकता है। सारी संपत्ति छीन ली गयी जो वह नदी के किनारे से इकठ्ठी कर लाया था। कोई कहेगा, पागल है वह। क्योंकि कंकड़-पथ्थर—बच्चे को सब रंगीन पत्थर, हीरे-मोती जैसे ही कीमती लगते हैं। असल में बच्चे की चेतना के तल और आपकी चेतना के तल में जो फर्क है, वही कठिनाई है। आपको पत्थर दिखायी पड़ रहे हैं, बच्चे को बहुमूल्य दिखायी पड़ रहे हैं। आप फेंकने का आग्रह करते हैं, बच्चा बचाने का आग्रह करता है। महावीर और हमारे बीच भी वह बच्चे और प्रौढ़ वाला फासला है। फिर और एक नयी चेतना है जो महावीर को मिली है। यहां इस जगत में हमें जो भी दिखायी पड़ता है महावीर के लिये उसका सारा मूल्य खो गया है, वह निर्मूल्य हो गया है। महावीर कुछ छोड़ते नहीं हैं, चीजें छूट जाती हैं। जो व्यर्थ हो गयी हैं, उन्हें ढोना असंभव है। महावीर छोड़कर जाते नहीं हैं। वे जाते हैं, चीजें छूट जाती हैं। जो व्यर्थ हो गयी हैं उन्हें रखना असंभव है। महावीर त्यागकर जाते नहीं हैं। वे जाते हैं, चीजें त्यक्त हो जाती हैं। जो व्यर्थ हो गया उसे साथ रखने का क्या अर्थ है! महावीर के बड़े भाई घर रह गये हैं।

महावीर के बड़े भाई देखते हैं कि उनके छोटे भाई ने भूल की। हीरे-जवाहरात, धन-दौलत, यश, सुख, सुविधा छोड़कर चला गया है। इन दोनों के बीच प्रौढ़ और बच्चे के मनों का फासला है। महावीर के बड़े भाई दुखी हैं कि महावीर दुख उठाने जा रहा है। और महावीर दुख उठाने नहीं जा रहे हैं। महावीर तो इतने आनंद से भर गये हैं कि अब दुख का कोई उपाय ही नहीं रह गया है। लेकिन पूछा जा सकता है कि वह वहीं घर पर भी रह सकते थे। जैसे मैंने एक सम्राट की बात कही। जो महल में था लेकिन महल जिसमें नहीं था। महावीर वहां भी रह सकते थे, लेकिन यह व्यक्ति व्यक्ति के टाइप और प्रकार की बात है। महावीर नहीं रह सकते थे। कृष्ण रह सकते हैं, जनक रह सकते हैं, बुद्ध नहीं रह सकते थे। यह व्यक्तियों की बात है और व्यक्ति की परम स्वतंत्रता है। एक के नियम दूसरे पर नहीं थोपे जा सकते। महावीर के लिए जो संभव था, वह संभव हुआ। महावीर के भीतर जो फूल खिल सकता था, वह खिला। लेकिन इस के फूल खिलने के भी अपने आनंद हैं। महल में, महल के न होकर रहने का अपना आनंद है। महल के बाहर, वृक्ष के नीचे रहने का अपना आनंद है। और दोनों की कोई तुलना नहीं हो सकती, 'कंपेरीजन' नहीं हो सकता। यह व्यक्तियों पर निर्भर करेगा। महावीर जब सब छोड़कर चले गये और वृक्षों के नीचे रहने लगे, तब भिक्षा पात्र लेकर गांव गांव भटकने में कौन सा आनन्द होगा? इस बात को थोड़ा समझना जरूरी है क्योंकि अपरिग्रह यह बड़ी कीमती और बड़ी गहरी बात है।

महावीर की समझ ऐसी है कि जब श्वास मैं नहीं लेता और जन्म मैं नहीं लेता, जन्म अपने से आता है, श्वास अपने से आती है, मृत्यु अपने से आती है, तो जीवन की व्यवस्था भी मैं अपने पर क्यों लूं? उसे भी परमात्मा पर छोड़ देते हैं। वही करे व्यवस्था। यह परम आस्तिकता का लक्षण है। ध्यान रहे परम आस्तिकता का। व्यवस्था भी क्यों? कल सुबह होगी, सूरज निकलेगा। नहीं निकलेगा तो हमने क्या व्यवस्था की है? कल अगर सुबह सूरज नहीं निकला और रात उसने रेजिगनेशन भेज दिया, 'इस्तीफा' दे दिया या कल बिल्कुल हड़ताल पर चला गया, स्ट्राइक पर चला गया और कल सुबह नहीं निकला तो हमारे पास क्या उपाय है, हम क्या करेंगे? और कल हवाओं से अगर आक्सीजन विदा हो जाय, और कल अगर जिन्दगी असंभव हो जाय, तो क्या करेंगे? हमने क्या सुरक्षा की है, क्या व्यवस्था की है? कल अगर पृथ्वी ठण्डी हो जाय, या कल अगर पृथ्वी टूट जाय और बिखर जाय—अनेक पृथ्वियां टूट चुकी हैं, अनेक बिखर रही हैं, अनेक सूरज ठण्डे हो चुके हैं, अनेक ठण्डे हो रहे हैं। कल अगर यह हो

जाय तो हमने क्या व्यवस्था की है ? महावीर कहते हैं कि इतने बड़े कामकाज में, इतने अनंत ब्रह्माण्ड में जहां हमारे हाथ में कुछ भी व्यवस्था नहीं है, वहां यह महावीर नाम का आदमी अपने आस-पास एक घर की व्यवस्था भी करे, इस नास्तिकता में पड़ने का क्या अर्थ है ? महावीर कहते हैं, यह व्यवस्था भी क्यों जब इतनी अव्यवस्थायें भी झेलनी पड़ सकती हैं, इतनी काजमिक अव्यवस्था में, इतनी ब्रह्माण्ड की असुरक्षा में। मैं बैंक बैलैंस रखकर भी क्या व्यवस्था कर पाऊंगा ? तो महावीर कहते हैं, यह व्यर्थ का बोझ मैं छोड़ देता हूं। अब मैं छोड़ देता हूं। जहां से श्वांस आती है, जहां से कल की सुबह आयेगी। जहां से आज का सूरज आया था, और जहां से आज का चांद आया है। और जहां से कल सुबह जड़ों को रस मिलेगा, जहां से कल वृक्षों में फूल खिलेंगे और जहां से पक्षी गीत गायेंगे; वहीं से अगर इस परम सत्ता की, अगर कोई आकांक्षा इस शरीर को भी जिन्दा रखने की है तो वह रख लेंगे, और नहीं रखने की है तो महावीर की अपनी अब कोई इच्छा शेष नहीं रह गयी है। यह महावीर की इस बात की घोषणा है सब छोड़कर जाना कि अब मैं अपने लिए नहीं जी रहा हूं। अगर परमात्मा जिलाना चाहता है तो वह जाने। अब मैं अपनी तरफ से नहीं जी रहा हूं। इसलिए महावीर की जिन्दगी में एक छोटा सा नियम था, जो बड़ा अद्भुत है। शायद दुनिया के किसी संन्यासी ने वैसे नियम का उपयोग नहीं किया है। सच तो यह है कि महावीर जैसा संन्यासी खोजना बहुत मुश्किल है।

महावीर का एक नियम था कि सुबह भीख मांगने निकलते थे तो वे अपने मन में सुबह के ध्यान में सोच लेते थे कि आज इस शर्त पर भीख मिलेगी तो स्वीकार करूंगा नहीं तो नहीं करूंगा। अब भिखारी कभी शर्त नहीं लगाते। भिखारियों की कोई 'कंडिशंस' हो सकती हैं ? भिखारी बेशर्त मांगते हैं, परन्तु महावीर शर्त लगाकर मांगते हैं। क्योंकि वे कोई भिखारी नहीं हैं और शर्त भी ऐसी है कि दूसरे आदमी के प्रति है। दूसरे आदमी को बतायी भी नहीं गयी है कि वह इन्तजाम कर ले। शर्त सिर्फ उन्हीं को पता है। जैसे वह सुबह शर्त लेकर निकले अपने मन में कि अगर आज एक गोरी स्त्री काले कपड़े पहने हुए एक आंख वाली मुझे भिक्षा देगी, तो मैं ले लूंगा अन्यथा नहीं लूंगा। अब इस गांव का उन्हें कुछ पता नहीं है। रात ही इस गांव में आकर वह ठहरे हैं। अब एक आंख वाली गोरी स्त्री काले कपड़े पहने हुए उनको भिक्षा देगी तो वह स्वीकार कर लेंगे अन्यथा वह गांव में घूमकर वापस लौट आयेंगे। वह कहेंगे, परमात्मा की मर्जी नहीं थी जाने दो। क्योंकि अपनी अब कोई मर्जी जीवन की नहीं है। न मरने की कोई मर्जी है, न जीने की कोई मर्जी है। अपनी तरफ से वह जो

जिजीविषा, है, वह जो 'लस्ट फार लाइफ' है, वह अब नहीं है। अब परमात्मा की मर्जी है तो रखे, मर्जी हो तो उठा ले। एक बार ऐसा हुआ कि महावीर महीनों तक गांव में जाते रहे और भिक्षा न मिल सकी। क्योंकि उन्होंने एक शर्त ले ली। अब वह शर्त तो बतायी नहीं जाती थी नहीं तो कोई इन्तजाम हो जाता। गांव बहुत से उपाय करता रहा, लेकिन वह शर्त पूरी न होती। अब बड़ी मुश्किल हो गई कि महावीर के मन में क्या है। महावीर ने एक शर्त ले ली कि एक राजकुमारी जो जंजीरों में बंधी हो, जिसका एक पैर मकान के भीतर और एक पैर मकान के बाहर हो, जिसकी आंखों में आंसू हों और ओठ पर मुस्कराहट हो। अगर वह भिक्षा देगी, तो ले लेंगे। तो फिर महीनों नहीं मिली भिक्षा। नहीं मिली तो भी रोज गांव से आनंदित वापस लौट आते। सारा गांव दुखी और पीड़ित है, सारा गांव रो रहा है, गांव भर में भोजन मुश्किल हो गया है। लोग हाथ-पैर जोड़ते हैं और कहते हैं कि स्वीकार करें। लेकिन महावीर कहते हैं, उसकी मर्जी। लेकिन यह भी हो गया। एक दिन यह भी हो गया। कारागृह में बन्द एक राजकुमारी ने भिक्षा दी। आंखों में आंसू थे उसके कारागृह में होने के कारण। ओठों पर मुस्कुराहट थी क्योंकि महावीर ने उसकी भिक्षा स्वीकार कर ली थी। हंस रही थी। महावीर उसके द्वार पर रुक गये, आंख में आंसू थे, ओठ पर मुस्कराहट थी। एक पैर जंजीरों से बंधा हुआ पीछे था, एक बाहर निकाल पायी थी, क्योंकि एक ही पैर खुला था। भिक्षा लेकर लौट गये, लेकिन इस भिक्षा के लिए परमात्मा कभी उनको जिम्मेदार नहीं ठहरा सकेगा। अगर कोई जिम्मेदार होगा तो परमात्मा ही होगा।

यह परम सत्ता में समर्पण है। यह संन्यास है, यह संन्यास की परम, अंतिम अवस्था है जहां व्यक्ति एक श्वांस भी अपनी तरफ से नहीं लेता। इसलिए महावीर कह सकते हैं कि मेरे कर्मों का अब कोई फल मेरे लिए नहीं है और मेरे कर्मों का कोई परिणाम अब मुझसे नहीं बंधा है। अब मैं कुछ कर ही नहीं रहा हूं। अब जो हो रहा है, हो रहा है। करना मेरे हाथ में नहीं है। कर मैं नहीं रहा हूं। अब मेरी कोई इच्छा नहीं है। लेकिन महावीर का यह अपना व्यक्तित्व है। और हम से भूल हो जाती है जब हम दो व्यक्तियों में तुलना करने लगते हैं। अगर हम जनक और महावीर की तुलना करें तो कठिनाई हो जायेगी। जनक का अपना आनन्द है। महावीर कहते हैं, परमात्मा को रखना होगा तो रख लेगा, किसीभी हाल में। जनक कहते हैं, परमात्मा ने महल दिया है तो मैं छोड़ने वाला कौन हूं ? जनक कहते हैं, परमात्मा ने राज्य दिया तो मैं छोड़ने की झंझट में भी क्यों पड़ूं ? कौन ठीक, कौन

गलत है ? दोनों का अपना ढंग है परमात्मा को देखने का । दोनों ही ठीक हैं। हजार तरह के लोग हैं । जीसस अपनी तरह के आदमी हैं, बुद्ध अपनी तरह के, महावीर अपनी तरह के, कृष्ण अपनी तरह के। हमने जब भी उनकी तुलना की है तब भूल हो जाती है, क्योंकि तुलना में हम एक तरफ, किसी एक आदमी की तरफ झुक जाते हैं । जिस की तरफ हमारे व्यक्तित्व का टाइप झुकता है, और तब हम दूसरे को गलत देखने लगते हैं । नहीं, कोई कारण नहीं है, इस पृथ्वी पर लाख तरह के व्यक्तित्व खिल गये हैं । लाख तरह के व्यक्तित्व के खिलने की संभावना है। तुलना की कोई भी जरूरत नहीं है, लेकिन गहरे में अगर देखें तो बात एक ही है । जनक महल में हैं क्योंकि वह कहते हैं कि जब परमात्मा ने महल दिया तो मैं क्यों छोड़ूं ? महावीर जंगल में हैं लेकिन बात एक ही है । वे कहते हैं, अगर उसको रखना है तो जंगल में भी महल की तरह रख लेगा । मैं क्यों फिक्र करूं ? दोनों एक ही बात कहते है लेकिन दोनों के व्यक्तित्व के ढंग अलग हैं । वह एक ही बात इन दो व्यक्तियों में अलग अलग गीत बन जाती है । वह एक ही बात इन दोनों व्यक्तियों में अलग अलग स्वर ले लेती है । एक ही बात इन दोनों व्यक्तियों में अलग अलग अर्थ बन जाती है, लेकिन बात एक ही है । वह परमात्मा में समर्पण की बात है । यह हमें ख्याल में आ जाय तो तुलना बन्द कर देनी चाहिए । यह हमारे ख्याल में आ जाय तो प्रत्येक को, वह जैसा है वैसा ही, उसकी पूर्णता में समझ लेने की कोशिश कर लेनी चाहिए, बिना कम्पेरीजन के । और तब एक दिन हम समझ पायेंगे कि हजार फूल हों लेकिन सौंदर्य एक है, हजार ढंग के दिये हों लेकिन ज्योति एक है । हजार ढंग के सागर हों लेकिन सागरों का पानी एक-सा खारा है । जिस दिन यह दिखाई पड़ना शुरू होता है उस दिन व्यक्ति विदा हो जाते हैं और वह जो मौलिक आधारभूत सत्य है उसका दर्शन हो जाता है !

★

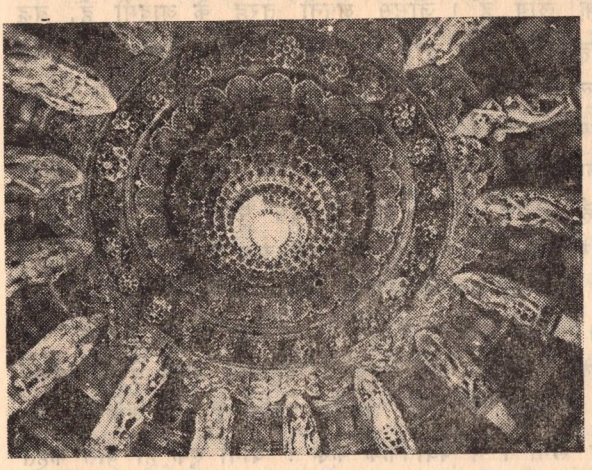

यात्रा संस्मरण : आबू

किशोररमण टंडन

संगमरमर के संगीत का सम्मोहन और उसमें समाहित साधना-शिविर

आबू रोड स्टेशन से माउंट आबू जाने वाली बस में प्रवेश करते समय किसी ने जेब पर हाथ साफ कर दिया ! संयोग से कुछ विशेष हानि नहीं हुई ––चार-पांच रुपयों पर ही बीती । ऐसा घृणित कर्म करने वाले चोर पर पहले तो थोड़ी झुंझलाहट आई, फिर न जाने क्यों उस के प्रति एक विचित्र संवेदना से मन भर गया–– यह सोचकर कि इस चोरी में चोर ही नहीं प्रकारांतर से मैं खुद भी साझेदार हूं । तभी बस में बैठे बैठे आचार्यश्री रजनीश के उस प्रवचन की सार्थकता सिद्ध होने लगी जिसमें पंच महाव्रत के अंतर्गत 'अचौर्य' के बारे में उन्होंने कहा था :

"ध्यान रहे, वस्तुओं के चोर को

तो हम जेलों में बंद कर देते हैं, लेकिन व्यक्तित्वों के चोरों के साथ हम क्या करें--जिन्होंने पर्सनालिटीज चुराई हैं ? ध्यान रहे, वस्तुओं के चोर ने कोई बहुत बड़ी चोरी नहीं की है, व्यक्तित्व के चोर ने बहुत बड़ी चोरी की है. . ."

बस चली जा रही है सामान्य गति से और मैं फिर सोचने लगा हूं--'बेचारे चोर ने कुछ रुपये चुरा कर ऐसा कौन-सा बड़ा अपराध कर डाला ? असली अपराधी तो मैं खुद हूं जो चेहरे चुराकर जीता हूं ! जिस शरीर को मैं अपना मानता हूं वह भी अपना नहीं है, और जिस व्यक्तित्व को मेरा होने का दावा करता हूं वह भी मेरा नहीं है। सब उधार है। सब दिखावा है। सब चोरी है। अनंत जन्मों से व्यक्तित्वों को चुराकर इतने मुखौटे ओढ़ रखे हैं कि अपना असली रूप, असली चेहरा भी पहचानना मुश्किल हो गया है। तब भला मुझसे बढ़कर और कौन चोर होगा . . . !' इस विचारधारा से मन की सारी उत्तेजना शांत हो गयी है।

० ० ०

आबू रोड स्टेशन और माउंट आबू के बीच लगभग २९ किलोमीटर की दूरी है। ४ अप्रैल का दिन, भरपूर गरमी पड़ रही है। कोलतार की सर्पाकार सड़क और ज्यादा तप रही है। लेकिन ८ किलोमीटर से आगे की यात्रा में मनोरम घाटियों के सुंदर दृश्य, सुरभित पवन, सघन कुंज, परिचित-अपरिचित वृक्षों की पंक्तियां, तरह तरह के रंग-बिरंगे फूल--इन सबका मन पर विचित्र शांतिदायक प्रभाव पड़ता है। बस ज्यों-ज्यों आगे बढ़ती जाती है पर्वत, घाटी, मैदान की नयनाभिराम छटा में चार चांद लगते चले जाते हैं !

० ० ०

आंखों पर काली पट्टी, कानों में रुई, होंठ बंद--न देखो, न सुनो, न बोलो। यद्यपि ऊपर से बात वैसी ही प्रतीत होती है जैसी गांधीजी के गुरु तीन बंदरों की है--बुरा न देखो, बुरा न सुनो, बुरा न बोलो। लेकिन यदि गहराई से देखा जाए तो जहां आचार्यश्री रजनीश की हर बात अनूठी होती है, वहां उनके 'इंद्रिय-उपवास' के प्रयोग की बात कुछ कम अनूठी नहीं है। इसमें कुछ भी न देखो--न अच्छा न बुरा। कुछ भी न सुनो--न अच्छा न बुरा। कुछ भी न बोलो--न अच्छा न बुरा। केवल 'स्व' को जानो, 'मैं कौन हूं' को जानो। जो है उसे जानते ही भीतर. . . . और भीतर . . . . और भीतर प्रवेश शुरू हो जाता है; सत्य की निकटता बढ़ने लगती है, और जो वस्तुतः हम हैं भीतर, वह प्रकट होने लगता है।

पैदल चलते, सड़क पार करते, बाजार में, भोजनालय में आंखों पर काली पट्टी बांधे भगवा वेषधारी साधकों को लोग देखते तो चकित भाव से देखते ही रह जाते ! फिर तरह तरह के मनमाने अनुमान लगाते। कोई कहता कि ये लोग किसी फिल्म की शूटिंग के लिए आये हैं (साथ में महीपालजी एवं मनमोहन कृष्णजी को देखकर)। कोई कहता—पुलिस ट्रेनिंग इंस्टीच्यूट में इन्हें गुप्तचरी की उच्च शिक्षा दी जा रही है। कोई कहता—एक नया पंथ स्थापित हुआ है—जिसमें ये लोग तंत्र-मंत्र, जादू-टोने में पारंगतता प्राप्त करने आए हैं। कोई कहता—किसी पागलखाने से छूटे हुए लोग हैं ये ! जितने मुंह उतनी बातें। लेकिन दो-तीन दिन बाद ही लोगों के दिलों से निर्मूल धारणाएं तिरोहित हो जाती हैं, और इस साधना-शिविर की सार्थकता का वास्तविक बोध होने पर काफी बड़ी संख्या में आलोचक लोग भी सक्रिय रुचि लेने लगते हैं।

साधना शिविर तो पहले भी कई हो चुके हैं—नारगोल, उदयपुर, माथेरान, कश्मीर, आजोल, मनाली आदि। और इसमें कोई संदेह नहीं कि हर शिविर अपने पूर्ववर्ती शिविर से बढ़कर ही सिद्ध हुआ है। किंतु आबू का यह साधना-शिविर तो उपलब्धि की ऊंचाई और प्रयोग की गहराई की दृष्टि से श्रेष्ठतम था ऐसा कहना अतिशयोक्ति नहीं।

० ० ०

यद्यपि यह बात लगती आश्चर्यजनक है, लेकिन है सत्य कि अरावली पर्वत (आबू जिसका एक अंग है) हिमालय से भी पुराना है। आबू का पौराणिक नाम अर्बुद है और इसका उल्लेख महाभारत, पद्मपुराण, विष्णुपुराण आदि में भी मिलता है। अर्बुद पर्वत के साथ अनेक देवी-देवताओं की कथाएं जुड़ी हैं। यह स्थान तपोवन के रूप में पुण्यभूमि रहा है जहां ऋषि-मुनियों और महर्षियों ने अपनी साधनाएं पूर्ण की हैं। जैन शास्त्रों में भी इसको अर्बुदाचल या अर्बुद-गिरि बताया गया है, क्योंकि किसी समय में इस पर्वत पर तपश्चर्या करने एक अरब अर्थात् सौ करोड़ मुनियों ने विचरण किया था। इसलिए आचार्यश्री द्वारा इस आबू की पुण्यस्थली को साधना-शिविर के लिए चुना जाना कुछ कम अर्थपूर्ण नहीं है !

० ० ०

आबू स्थित देलवाड़ा मंदिर के बारे में काफी कुछ पढ़ चुका था;

और यहां आने से पूर्व प्रिय मित्र महीपालजी इसके बारे में बहुत कुछ विस्तार से बता चुके थे। इसलिए मंदिर के प्रवेशद्वार पर आने तक यही धारणा बनी रही कि जो कुछ जानकारी अब तक मिल चुकी है उससे ज्यादा और होगा भी क्या! लेकिन अंततोगत्वा वही कहावत चरितार्थ हुई कि 'कानों सुनी और आंखों देखी में बड़ा अंतर होता है।'

देलवाड़ा के विमल-वसहि मंदिर के अलंकृत द्वार में प्रवेश करते ही कुछ क्षणों के लिए व्यक्ति दिग्विमूढ़-सा हो जाता है—क्या देखे क्या न देखे! इतना अतुलित संगमरमरीय सौन्दर्य दृश्यमान है वहां!

सन् १०३१ ईस्वी में १८ करोड़ ५३ लाख रुपयों की लागत से वीर विमलशाह द्वारा निर्मित यह मंदिर १५०० कारीगरों और १२०० मजदूरों द्वारा किए गये १४ वर्ष के परिश्रम का फल है। मंदिर की छतों, गुम्बजों, स्तंभों, तोरणों की सुंदर और ऐश्वर्ययुक्त नक्काशी बेमिसाल है। शायद विश्व की किसी कलाकृति से इसकी तुलना नहीं की जा सकती। मंदिर की प्रदक्षिणा में कमल पुष्पों, पक्षियों, देवी-देवताओं, तीर्थंकरों के जीवन-प्रसंगों को जिस सूक्ष्मता और कलात्मकता से उत्कीर्ण किया गया है उसे देखकर कलाकारों की निष्ठा, श्रद्धा और समर्पण भाव के सामने नत मस्तक हो जाने को जी चाहता है। मंदिर के परकोटे में ५१ देवालय हैं, इन देवालयों में भिन्न भिन्न तीर्थंकरों की

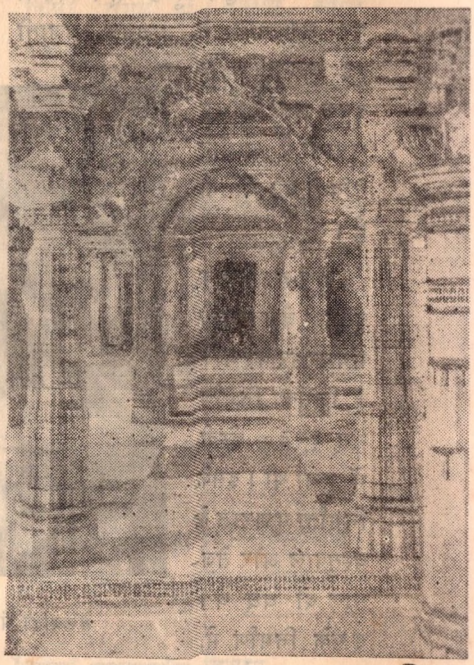

विमल-वसहि की मोहक कला

मूर्तियां हैं। देवालय के बाहर छतों पर की गई ऐसी नक्काशी है कि देखने वाला दंग रह जाए! और कलात्मक मूर्तियों की ऐसी भाव मुद्रा है जैसे अब बोलीं कि तब बोलीं!

इस मंदिर के रंग-मण्डप में अनेक अलंकृत स्तंभ और कलात्मक तोरण विद्यमान हैं। इसके बीच में एक गुम्बज है जिसमें हाथियों, घुड़सवारों, बत्तखों आदि की गोलाकार पंक्तियों से घिरे केन्द्र में झूमकों के लटकते हुए गुच्छे हैं। स्तंभों पर मुग्धभाव से वाद्ययंत्र बजाती हुई ललनाएं और इनके ऊपर विभिन्न मुद्राओं में आसीन देवियों की मूर्तियां हैं।

लूण-वसहि एक दूसरा वैभवशाली संगमरमर का मंदिर है, जिसका निर्माण सन् १२३० ईस्वी में हुआ था। इसके निर्माता गुजरात के वस्तुपाल और तेजपाल दो बंधु थे। इसके निर्माण में, बताया जाता है, १२ करोड़ ५३ लाख रुपयों का व्यय हुआ था।

वैसे लूण–वसहि की रचना विमल-वसहि से काफी मिलती-जुलती है लेकिन गौर से देखने पर इस मंदिर का निर्माण-कार्य ज्यादा बारीक, ज्यादा खूबसूरत, ज्यादा नाजुक और ज्यादा कलात्मक है।

देलवाड़ा मंदिर में विद्यागौरी

इस मंदिर की सबसे अधिक सराहनीय और दर्शनीय कला यदि देखने को मिलती है तो वह है देरानी-जेठानी के गोखड़े में। गूढ़-मण्डप के द्वार के दोनों ओर निर्मित ये गोखड़े वस्तुपाल और तेजपाल की पत्नियों की आपसी होड़ के फलस्वरूप नौ-नौ लाख रुपये के व्यय से तैयार किए गए थे, ऐसी मान्यता है। एक कला मर्मज्ञ का कथन अक्षरशः सही है कि 'इसकी उत्कीर्णता इतनी सुंदरता से की गई है मानो मोम को ही ढाल कर रख दिया गया हो!'

इस मंदिर की प्रदक्षिणा में देवालयों की संख्या ५२ है और इनके आगे की छतों पर पुष्पों, पक्षियों, पशुओं, जलाशयों, नौकाओं आदि को बड़ी दक्षता से मण्डित किया गया है।

अब हम रंग-मण्डप में आते हैं, जो विमल-वसहि से कुछ छोटा जरूर है किन्तु शिल्प और कला की दृष्टि से कम नहीं। इस मण्डप

के गुम्बज का अलंकृत केन्द्रीय भाग साज-सज्जा की दृष्टि से दर्शनीय तो है ही इसके अतिरिक्त इसमें अंकित १६ विद्या-देवियों की मूर्तियों की भावमुद्रा इतनी स्वाभाविक है जैसे ये सब जीवंत हो!

सौन्दर्य और कला की इस अनुपम कृति देलवाड़ा मंदिर को एक बार देखकर उसकी पूरी गरिमा को आत्मसात कर लेना संभव नहीं। इस लिए इसे तीन बार देखने पर भी हर बार कुछ न कुछ ऐसी नवीनता दृष्टिगोचर हुई कि बार-बार देखने की इच्छा बनी ही रही।

भले ही लोग विश्व के आश्चर्यों में भारत के ताजमहल की भी गणना करते हों, लेकिन निष्पक्ष भाव से देखा जाए, तो विश्व के सात आश्चर्यों में गिने जाने की प्रतिष्ठा सिर्फ देलवाड़ा मंदिर को ही दी जा सकती है, जिसके संगमरमरीय सौन्दर्य में स्वप्निल संगीत जैसी मोहकता है।

आबू में और भी अनेक दर्शनीय स्थान हैं जैसे—नखी तालाब, श्री रघुनाथजी का मंदिर, टाड रॉक, सन सेट पाइंट, आदि। लेकिन इनके अलावा अनेक ऐसे पवित्र स्थल भी विद्यमान हैं जहां किसी समय में वसिष्ठ, व्यास, गौतम, भृगु, भर्तृहरि, शांतिनाथ आदि की दिव्य वाणी का उद्घोष हुआ था। और संयोग ही कहना, चाहिए इसे कि उसी तपोभूमि पर जिस समय 'ईशावास्योपनिषद' का विवेचन करते हुए आचार्यश्री की पवित्र वाणी अनुगुंजित होती थी उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे यह वाणी किसी इस लोक के प्राणी की न होकर साक्षात् परमात्मा के श्रीमुख से निःसृत दिव्यवाणी है:

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

'पराग' सम्पादकीय विभाग,
टाइम्स आफ इंडिया, बम्बई-१

बुद्ध ने कहा : "मैं था ही नहीं, तो जाऊंगा कहां ?
बस एक बबूला था जो मिट गया !" तो फिर.....

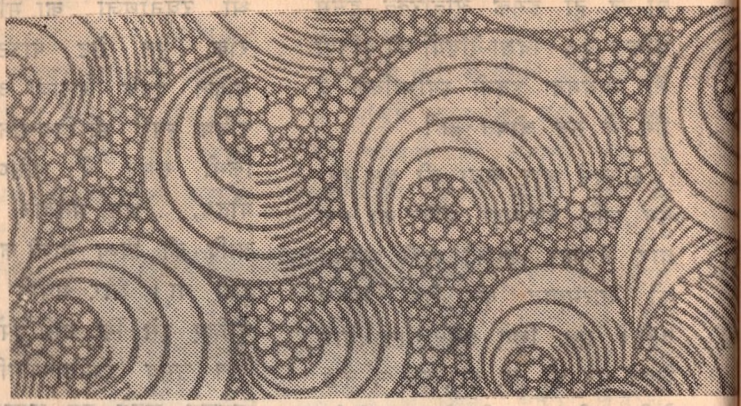

चिन्मय कौन ? अजन्मा क्या ?

एक तो सागर है, लहरें आती हैं और चली जाती हैं। और सागर बना रहता है। लहरें सागर से जरा भी अलग नहीं हैं, फिर भी लहरें सागर नहीं हैं। लहरें, सिर्फ सागर में उठे रूप हैं, आकार हैं जो बनेंगे मिटेंगे। जो लहर बनी ही रहे, उसे लहर कहना बेकार है। लहर का मतलब है कि आयी भी नहीं, और गयी। लहर शब्द का मतलब भी यही है, उठी भी नहीं, कि जा चुकी। जिसमें उठती है वह सदा है, जो उठती है वह सदा नहीं है। तो सदा की छाती पर परिवर्तनशील का नृत्य है। सागर तो अजन्मा है, लहर का जन्म होता है। सागर को कोई मृत्यु नहीं है, लहर की मृत्यु होती है। लेकिन लहर भी अगर यह जान ले कि मैं सागर हूं तो जन्मने और मरने के बाहर हो गयी। जब तक लहर समझती है कि मैं लहर हूं, तभी तक जन्मने और मरने के भीतर है। जो भी 'है' वह अजन्मा है, उसकी कोई मृत्यु नहीं। क्योंकि जन्म होगा कहां से ? शून्य से कुछ पैदा नहीं होता। मृत्यु होगी कहां ? शून्य में कुछ खोता नहीं। जो भी है, अस्तित्व, वह तो सदा है। समय कुछ भी अंतर नहीं कर पाता।

काल से कोई रेखा नहीं पड़ती है। यह जो अस्तित्व है, यह अस्तित्व हमारी पकड़ में नहीं आता। क्योंकि हमारी इंद्रियों की पकड़ में सिर्फ रूप आता है, आकार आता है। नाम-रूप के अतिरिक्त हमारी इंद्रियां कुछ भी पकड़ नहीं पातीं। यह बहुत मजे की बात है कि सागर के किनारे आप सैकड़ों बार खड़े रहे होंगे और अनेक बार कहा होगा कि मैं सागर देखकर लौटा हूं। लेकिन देखी आपने सिर्फ लहरें हैं, सागर आपने कभी देखा नहीं। सागर कभी दिखायी पड़ सकता नहीं। आप जो भी देखेंगे वह लहर है। इंद्रियां, सिर्फ ऊपर जो है उसे पकड़ पाती हैं, भीतर जो है, वह छूट जाता है। ऊपर भी आकार भर को पकड़ पाती हैं, आकार के भीतर जो निराकार है वह छूट जाता है। तो नाम-रूप का जो जगत है वह इंद्रियों के देखने की वजह से पैदा हुआ है। वह कहीं है नहीं। जो भी नाम-रूप में है वह सब जन्मा है और मरेगा। जो उसके पार है वह सदा है,—न वह जन्मा है, न वह मरेगा। तो जब बुद्ध कहते हैं कि बबूले की भांति मैं उठा तो वे दो बातें कर रहे हैं। सच पूछा जाय तो बबूले में होता क्या है? अगर बबूले में भी प्रवेश करें तो हवा का थोड़ा सा आयतन बबूले के भीतर होता है; उसी हवा का, जो बबूले के बाहर है, जो अनंत होके फैली है। इस विराट हवा के और बबूले के भीतर की हवा के बीच पानी की एक पतली सी दीवाल होती है, एक फिल्म की दीवाल, जरा सी पानी की पतली दीवाल। जिसको दीवाल कहना भी ठीक नहीं है, – सिर्फ पानी की पतली फिल्म। वह पानी की जरा सी पतली फिल्म हवा के एक छोटे से हिस्से को कैद कर लेती है। पानी की पतली फिल्म और हवा का छोटा सा हिस्सा कैद होकर बबूला बन जाता है। स्वभावतः सब चीजें बड़ी होती हैं, बबूला भी बड़ा होता है, फूल जाता और बड़ा होने पर टूटता है। फिर हवा बाहर की हवा से मिल जाती है, फिर पानी पानी में मिल जाता है। बीच में जो निर्मित हुआ था वह इन्द्रधनुषी अस्तित्व था। —'रेनबो एक्जीस्टेंस'। कहीं कुछ अंतर नहीं पड़ा था शाश्वत प्राणों में, सब वैसे का वैसा था। लेकिन एक रूप निर्मित हुआ था, वह रूप जन्मा और मरा।

हम भी अपने को बबूले की तरह देखें तो रूप का बनना और मिटना है। भीतर जो है, वह सदा से है। लेकिन हमारी 'आइडिंटिटी' हमारा तादात्म्य होता है बबूले से। तो मैं कहता हूं, अगर आपके शरीर

को देख के कहूं तो कहूंगा कि आप मरणधर्मा हैं, मर ही रहे हैं। जन्मे उसी दिन से मर रहे हैं। मरने के सिवाय आपने कोई काम ही नहीं किया है। बबूले को फूटने में सात क्षण लगते होंगे, आपको फूटने में सत्तर वर्ष लगेंगे। समय की अनंत धारा में सात क्षण और सत्तर वर्ष में कोई भी फर्क नहीं है। सब फर्क हमारी छोटी आंखों के फर्क हैं। अगर समय अनंत है, न उसका कोई प्रारंभ है, न आदि है, तो सत्तर साल और सात क्षण में कौन सा फर्क होगा? हां, समय अगर सीमित हो, सौ ही साल का हो, तो फिर सत्तर साल में और सात क्षण में फर्क होगा। सात क्षण बहुत छोटे होंगे, सत्तर साल बहुत बड़े होंगे। लेकिन अगर दोनों तरफ कोई सीमा नहीं है, न इस तरफ कोई प्रारंभ है, न उस तरफ कोई अंत है तो सात क्षण में और सत्तर साल में क्या फर्क है! हमें फिर भी भ्रम हो सकता है कि फर्क है, लेकिन अगर हम समय की पूरी धारा को देखें तो क्या फर्क है? अनंत की तुलना में सात क्षण भी उतने ही हैं, सत्तर वर्ष भी उतने ही हैं। कितनी देर में फूट जाता है बबूला, यह बड़ा सवाल नहीं है। बनता है तभी से फूटना शुरू हो जाता है। इसलिए मैंने कहा, शरीर को देखकर जब मैं कहता हूं— शरीर से मेरा मतलब है—नाम-रूप से निर्मित जो दिखायी पड़ रहा है। और आत्मा से मेरा मतलब है, नाम-रूप के गिर जाने पर भी जो होगा। नाम-रूप नहीं थे तब भी जो था। आत्मा से मेरा मतलब है सागर, और शरीर से मेरा मतलब है लहर। और ये दोनों ही बातें एक साथ समझनी जरूरी हैं। नहीं तो इन दोनों के बीच अगर भ्रम पैदा हो तो जगत की सारी कठिनाइयां खड़ी होती हैं।

भीतर तो हमारे वह है जो कभी मर नहीं सकता। इसलिए गहरे में हमें सदा ही ऐसा लगता है, मैं कभी न मरूंगा। लाखों लोगों को हम मरते हुए देखते हैं, फिर भी भीतर प्रतीति नहीं होती कि मैं मरूंगा। इसकी गहरे में कहीं कोई ध्वनि पैदा नहीं होती कि मैं मरूंगा। सामने ही लोग मरते रहे हैं और फिर भी हमारे भीतर 'न मरने' का भाव कहीं सजग होता है। किसी गहरे तल में 'मैं नहीं मरूंगा' यह बात हमें जाहिर ही है। माना कि बाहर के तथ्य झुठलाते हैं, बाहर की घटनाएं कहती हैं कि ऐसा कैसे हो सकता है, कि मैं न मरूंगा? तर्क कहते हैं कि जब सब मरेंगे तो तुम भी मरोगे, लेकिन सारे तर्कों को काट कर भी भीतर कोई स्वर कहे

ही चला जाता है कि 'मैं नहीं मरूंगा'। इसी लिए जगत में कोई आदमी कभी भरोसा नहीं करता कि वह मरेगा। इसीलिए तो हम इतनी मृत्यु के बीच भी जी पाते हैं, नहीं तो इतनी मृत्यु के बीच तत्काल मर जायं। जहां सब मर रहा है, जहां प्रतिपल हर चीज मर रही है वहां हम किस भरोसे जीते हैं? आस्था क्या है जीने की? ट्रस्ट कहां है जीने का? किसी परमात्मा में नहीं है। आस्था इस आधार पर खड़ी है, कि हम कितना ही कहें कि मृत्यु है, कितना कहें कि मरते हैं, भीतर कोई कहे चला जाता है कि मरते ही नहीं। कोई आदमी अपनी मृत्यु को कंसीव नहीं कर सकता। इसकी धारणा नहीं बना सकता कि मैं मरूंगा। कैसी ही धारणा बनाये, वह पायेगा कि वह तो बचा हुआ है। अगर वह अपने को मरा हुआ भी कल्पना करे, देखे, तो भी वह पायेगा कि मैं देखता हूं। मैं बाहर खड़ा हूं। मृत्यु के भीतर हम अपने को कभी नहीं रख पाते सदा ही बाहर खड़े हो जाते हैं। मृत्यु के भीतर अपने को कल्पना में भी रखना असंभव है। क्योंकि उस कल्पना में भी, मैं बाहर खड़ा देखता रहूंगा। कल्पना करने वाला बाहर ही रह जायगा, वह मर नहीं पायेगा। यह जो भीतर का स्वर है वह सागर का स्वर है, जो कह रहा है मौत कहां है? मौत कभी जानी नहीं। लेकिन फिर भी हम मौत से डरते हैं, यह हमारे शरीर का स्वर है। और इन दोनों के बीच 'कन्फ्यूजन' है। भीतर के स्वर को हम जिस दिन शरीर समझ लेते हैं, उसी दिन प्राण कंपने लगते हैं, क्योंकि शरीर तो मरेगा। इसे हम कितना ही झुठलाएं, कितना ही विज्ञान खड़ा करें, कितने ही चिकित्सा के शास्त्र बनायें, कितनी ही दवाइयों को घेर के बैठ जायं और कितने ही चिकित्सकों को चारों तरफ खड़ा कर दें, फिर भी शरीर एक क्षण को भी नहीं कहता कि मैं बचूंगा। शरीर के पास कोई स्वर नहीं अमृत्यु का। वह जानता है कि मैं मर चुका। शरीर जानता है वह बबूला है, और हम जानते हैं कि हम बबूले नहीं हैं। जिस दिन हम समझते हैं कि हम बबूले हैं, हमारे जीवन का सारा उपद्रव शुरू हो जाता है। वह जो शाश्वत है हमारे भीतर, जैसे ही लहर के साथ तादात्म्य कर लेता है वैसे ही हम कठिनाई में पड़ जाते हैं। इस तादात्म्य का नाम अज्ञान है। इस तादात्म्य के टूट जाने का नाम ज्ञान है। कुछ फर्क नहीं होता, सब चीजें फिर भी वैसी ही होती हैं। शरीर अपनी जगह होता है, आत्मा अपनी जगह होती है। एक भ्रांति दूर हो जाती है। तब हम जानते हैं कि

शरीर मरेगा, इससे हम भयभीत नहीं होते। क्योंकि इसमें भयभीत होने का उपाय नहीं है। शरीर मरेगा ही। भयभीत भी होने का वहां उपाय है जहां बचने की संभावना है। आप ऐसी स्थिति में कभी भयभीत नहीं होते जहां बचने की संभावना ही नहीं होती। बचने की संभावना से ही भय है। युद्ध के मैदान पर सैनिक जाता है तो जब तक घर से जाता है तबतक डरा रहता है। युद्ध के मैदान पर भी कंपा रहता है, लेकिन जब बचाव का सब उपाय समाप्त हो जाता है और बम उसके ऊपर ही गिरने लगते हैं तब वह निर्भय हो जाता है। तब वह आदमी, जो जरा सी गोली चल जाती तो घबड़ा जाता था, अब बम गिरते रहते हैं, गोलियां चलती रहती हैं, तो बैठ के ताश भी खेलता है। वह बिल्कुल साधारण आदमी है, कुछ विशेष आदमी नहीं है वह। स्थिति विशेष है। स्थिति ऐसी है जिसमें अब मौत से डरने का कोई अर्थ नहीं है — 'मीनिंगलेस'। मौत इतनी प्रगट है कि अब बचने का कोई सवाल ही नहीं रहता। फिर भी युद्ध के मैदान पर भी बचने की कुछ संभावना है, क्योंकि कोई मरता है, कोई बचता है, इसमें थोड़ा भय सरकता है। लेकिन मृत्यु के मैदान पर बचने की कोई संभावना नहीं, कोई भी नहीं बचता। इसलिए अगर यह भ्रांति मेरी टूट जाय कि मैं शरीर हूं. तो उसी के साथ मृत्यु का भय चला जाता है। क्योंकि शरीर मरेगा, यह एक सुनिश्चितता हो जाती है। यह नियति 'डेस्टिनी' हो जाती है। इसका उपाय नहीं है। यह भाग्य है शरीर का, इसमें रती भर भी हेर-फेर नहीं है। एक तरफ स्पष्ट हो जाय कि शरीर मरेगा ही, मृत्यु शरीर का स्वभाव है। (मरेगा, ऐसा कहना भी ठीक नहीं है। वह मरा हुआ ही है।) जैसे एक तरफ यह स्पष्ट हो, वैसे दूसरी तरफ यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वह जो शरीर के पार है, वह कभी जन्मा ही नहीं, इसलिए मरने का कोई सवाल ही नहीं है। तो वहां से भी भय तिरोहित हो जाता है। क्योंकि जो नहीं मरेगा उसके लिए भय का क्या कारण है, और वह जो मरेगा ही उसके लिए भी भय का कोई कारण नहीं। भय, इन दोनों के मेल से पैदा होता है। भय, इससे पैदा होता है कि भीतर कोई कहता है कि बचूंगा और बाहर कोई कहता है कि कैसे बचूंगा? और दोनों चीजें मिश्रित हो जाती हैं। ये दो स्वर अलग अलग वीणाओं से उठ रहे हैं, यह हमें पता नहीं चलता। इसलिए ये स्वर एक

दूसरे में खो जाते हैं और हम इसे एक ही संगीत समझ लेते हैं।

अज्ञान में निरन्तर भय है मृत्यु का, फिर भी ऐसे जिये जाने की चेष्टा है जैसे मौत नहीं है। अज्ञानी जीता ऐसे ही है जैसे मौत नहीं है। यद्यपि प्रतिपल डरा हुआ जीता है कि मौत है। ज्ञानी ऐसे जीता है जैसे मौत नहीं है। और प्रतिपल जान कर जीता है कि किसी भी क्षण मौत हो सकती है। लेकिन तल का फासला हो गया है—दो तलों पर अस्तित्व टूट गया। परिधि अलग हो गयी, केन्द्र अलग हो गया। लहर अलग हो गयी, सागर अलग हो गया। रूप अलग हो गया, अरूप अलग हो गया। फिर ऐसा नहीं कि वह मौत से भाग जाता है। यह भी एक बहुत अद्भुत बात है कि जीवन की जो भ्रांतियां हैं वह हमारे जानने से मिटने वाली भ्रांतियां नहीं हैं। जानने से सिर्फ हमारी पीड़ा मिटती है। जैसे शंकर ने निरंतर उदाहरण लिया है कि राह में पड़ी है रस्सी और अंधेरे में दिखायी पड़ जाता है कि सांप है। लेकिन वह उदाहरण बहुत ठीक नहीं है। क्योंकि उसके पास आ जाने से पता चल जाता है कि यह रस्सी है। और एक दफा पता चल जाय फिर आप कितनी ही दूर चले जायें फिर सांप दिखायी नहीं पड़ सकता। लेकिन जीवन का भ्रम इस तरह का नहीं है। जीवन का भ्रम ऐसे है जैसे आप सीधी लकड़ी को पानी में डाल दें, वह तिरछी दिखायी पड़ती है। बाहर निकाल के फिर देख लें कि सीधी है फिर पानी में डाल दें वह तिरछी दिखायी पड़ने लगती है। हाथ डालकर पानी में टटोलें, पायेंगे कि सीधी है, लेकिन फिर भी तिरछी दिखायी पड़ती है। आपके ज्ञान से उसके तिरछे होने का रूप नहीं मिटता। हां, लेकिन तिरछी है, इसका भ्रम मिट जाता है। तो जीवन का जो हमारा भ्रम है यह सांप और रस्सी वाला भ्रम नहीं है, वह हमारा पानी में डाली गयी सीधी लकड़ी का तिरछा दिखायी देने वाला भ्रम है। हम भली भांति जानते हैं लकड़ी तिरछी नहीं है, फिर भी तिरछी दिखायी पड़ रही है। बड़े से बड़ा वैज्ञानिक सब तरह की जांच-परख कर चुका है कि पानी में जाने से लकड़ी तिरछी नहीं होती है, फिर भी उसे भी वह तिरछी दिखायी पड़ती है। उसका तिरछा दिखायी पड़ना इंद्रियगत है। आपके ज्ञान से उसका कोई लेना-देना नहीं है। हां, अब आप तिरछा मानकर व्यवहार नहीं करेंगे, अब आप मानकर चलेंगे कि लकड़ी सीधी है, और देखते रहेंगे कि लकड़ी तिरछी है। यह दो तल पर बंट जायेंगी बातें—जानने के तल पर लकड़ी सीधी होगी,

देखने के तल पर लकड़ी तिरछी होगी। इन दोनों में कोई भ्रांति नहीं रह जायगी। जीने के तल पर शरीर होगा, बाहर के तल पर शरीर होगा, अस्तित्व के तल पर आत्मा होगी। खो नहीं जायगा। ऐसा नहीं कि ज्ञानी को संसार खो जाता है। ज्ञानी को संसार नहीं खोता। ज्ञानी को संसार वैसा ही होता है जैसे आपको होता है। शायद और भी प्रगाढ़, और भी साफ, और भी स्पष्ट होता है। रोआं रोआं अस्तित्व का साफ उसकी दृष्टि में होता है। खो नहीं जायगा, लेकिन अब वह भ्रम में नहीं पड़ता। अब वह जानता है कि रूप, उसकी इंद्रियों से पैदा हुए हैं, जैसे लकड़ी पानी के भीतर तिरछी दिखायी पड़ती है क्योंकि किरणों का रूपान्तरण हो जाता है। पानी में किरणों की यात्रा बदल जाती है। किरणें थोड़ी झुक जाती हैं, उनके झुकाव की वजह से लकड़ी तिरछी दिखायी पड़ती है। हवा में किरणें एक तरह से चलती हैं, झुकती नहीं हैं, इसलिए लकड़ी तिरछी नहीं दिखायी पड़ती। लकड़ी तिरछी नहीं होती, लकड़ी जिस किरण के आधार पर दिखायी पड़ती है वह तिरछी हो जाती है। और किरण के तिरछी होने की वजह से लकड़ी तिरछी दिखायी पड़ती है। अस्तित्व तो जैसा है वैसा है, लेकिन इंद्रियों से गुजर के जो ज्ञान की किरण है, वह थोड़ी तिरछी हो जाती है। जानने का जो ढंग है वह बदल जाता है। जैसे कि मैंने एक नीला चश्मा लगा लिया। अब चीजें नीली दिखायी पड़ने लगेंगी। मैं चश्मा उतार के देखता हूं, तो चीजें सफेद हैं। फिर चश्मा लगाता हूं, वह फिर नीली दिखायी पड़ती है। पर अब मैं जानता हूं कि चीजें सफेद हैं, चश्मे से नीली दिखायी पड़ती हैं। चीजें सफेद हैं, अब मैं भ्रम में पड़ने वाला नहीं हूं। अब मैं चश्मा नीला लगाये रहूं, चीजें नीली दिखायी पड़ती रहेंगी और मैं जानूंगा भलीभांति कि चीजें सफेद हैं। ठीक ऐसा ही, आत्मा अमृत है ऐसा जानकर भी शरीर का मरणधर्मा होना चलता रहता है। अस्तित्व सनातन है, ऐसा जानकर भी लहरों का खेल चलता रहता है। लेकिन अब मैं जानता हूं कि वह चश्मे से दिखायी पड़ता है। वह आंख है इंद्रिय की, पर ऐसा है नहीं।

इसलिए बुद्ध या महावीर या क्राइस्ट जैसे लोगों के वक्तव्य दो तलों पर हैं। और हमारी कठिनाई यह है कि हम चूंकि दोनों तलों को अपने भीतर ही सम्मिश्रित कर लेते हैं, हम उनके वक्तव्यों का भी सम्मिश्रण कर लेते हैं स्वभावतः। कभी बुद्ध इस तरह बोल रहे हैं कि जैसे वह शरीर हैं। जब वे कहते हैं आनंद, मुझे प्यास लगी है, पानी ले आ। अब आत्मा को कोई प्यास

नहीं लगती है, प्यास शरीर को लगती है। वे तो कह रहे हैं, मुझे प्यास लगी है आनंद, तू पानी ले आ। अब आनंद यों भी सोच सकता है कि बुद्ध कहते हैं कि शरीर तो है भी नहीं, नाम-रूप है, बबूला है। जब जान लिया आपने कि शरीर है नहीं, तो अब कैसी प्यास! और फिर बुद्ध दूसरे दिन कहते हैं कि मैं तो कभी पैदा हुआ नहीं, मैं कभी मरूंगा नहीं। तो अब सुनने वाले को कठिनाई शुरू होती है। सुनने वालों की कठिनाइयां यह हैं, कि वे सोचते हैं कि ज्ञान में अस्तित्व बदल जायगा। नहीं, ज्ञान में अस्तित्व नहीं बदलता, सिर्फ दृष्टि बदलती है। और जब बुद्ध कह रहे हैं, आनन्द मुझे प्यास लगी है तब भी वह यह कह रहे हैं कि आनंद, इस शरीर को प्यास लगी है। तब भी वह यही कह रहे हैं कि यह जो नाम-रूप का बबूला है, इसे प्यास लगी है, अगर नहीं पानी डालेगा तो यह जल्दी फूट जायगा। वह इतना ही कर रहे हैं। लेकिन सुनने वाले की कठिनाई यह है कि जिस तरह वह अपने अस्तित्व को मिला-जुला के जी रहा है दोनों बातों से और कभी नहीं समझ पाता कि कौन स्वर कहां है, वैसे ही वह अर्थ वहां से भी निकालना शुरू करता है।— इसलिए मैंने ऐसा कहा।

यों अगर दोनों तलों पर दोनों बातें साफ हो जायें, जैसे एक पुस्तक लिखी गई है— ग्रेड्स ओफ सिगनीफिकेंस—ऐसे महत्ता के तल हैं। और जितना महान व्यक्ति है उतनी अनेक महत्ताओं के तलों पर वह एक साथ जीता है। जीना ही पड़ता है। क्योंकि जब जिस तल का व्यक्ति उसके सामने आता है, उसी तल पर उससे बात करनी पड़ती है। या फिर बात बेमानी हो जाती है। बुद्ध अगर बुद्ध की तरह आपसे बात करें तो बेकार होगी। आप समझेंगे पागल है। और ऐसा अक्सर हुआ है कि इस तरह के लोगों को हमने पागल समझा है। पागल समझने का कारण था। क्योंकि जो बात उन्होंने की वह बिल्कुल पागलपन की मालूम पड़ी। या तो वह पागल हो जायेंगे अगर अपने तल पर बोलें, या आपके तल पर बोलें तो उनको ग्रेड नीचे लाना पड़ेगा। उस तल पर आना चाहिए उन्हें, जहां आप समझ पायें। जहां वह पागल नहीं मालूम पड़ेंगे। फिर जितनी तलों के लोग उनके पास आते हैं उतनी तलों की बात उनको कहनी पड़ेगी। करीब करीब बात ऐसी है कि बुद्ध जैसे व्यक्ति को—जितने लोगों से उन्होंने बात कही, ऐसा समझ लेना चाहिए कि उतने दर्पण बुद्ध के सामने आये। और सब दर्पणों ने अपनी अपनी तस्वीर बना ली। कोई दर्पण तिरछा था तो तिरछी तस्वीर बनी। नहीं तो दर्पण नाराज होता। दर्पणों से

मेल खानी चाहिए वह तस्वीर। कोई दर्पण लंबा करके दिखा था तो लंबी तस्वीर बनी। कोई छोटा करके दिखा तो छोटी तस्वीर बनी। अन्यथा दर्पण नाराज होते, या फिर दर्पणों को तोड़ना पड़ता और ठीक करना पड़ता। इसलिए बहुत तलों पर वक्तव्य दिये। और कई बार एक ही वक्तव्य में बहुत तल होते हैं। क्योंकि ऐसा व्यक्ति बोलना शुरू करता है तब वह अक्सर वहीं से शुरू करता है जहां वह होता है। और जब वह बोलने का अंत करता है तो अक्सर वहीं होता है जहां आप होते हैं। कई दफा तो एक ही वाक्य में भी लंबी यात्रा हो जाती है। क्योंकि जब वह बोलना शुरू करता है तो वहीं से शुरू करता है जहां वह होगा। आपसे बड़ी अपेक्षाएं रखकर शुरू करता है। फिर धीरे धीरे अपेक्षा उसे नीचे उतारनी पड़ती है। आखिरी वक्तव्य पर वह वहां होता है जहां आप होते हैं। और ये दो—गहरे, खाई जैसे विभाजन हैं। इनसे जो आखिरी खतरा ख्याल में ले लेना चाहिए वह यह कि इसका यह मतलब नहीं कि दोनों बहुत अलग हैं, कि भिन्न भिन्न हैं, कि पृथक हैं। जैसा मैंने कहा, सागर और लहर जैसी है। यह और मजे की बात है कि सागर तो बिना लहर के भी हो सकता है लेकिन लहर कभी बिना सागर के नहीं हो सकती। तो निराकार तो आकार के बिना हो सकता है, लेकिन आकार कभी निराकार के बिना नहीं हो सकता। लेकिन हम अपनी भाषा में देखें तो उल्टा मजा है। भाषा में निराकार शब्द में आकार है, आकार शब्द में निराकार नहीं। भाषा में निराकार में तो आकार को होना ही पड़ेगा, आकार में निराकार न हो तो चल जायगा। भाषा हमने बनायी है। अस्तित्व की हालत उल्टी है। वहां निराकार हो सकता है बिना आकार के। आकार कभी निराकार के बिना नहीं हो सकता है। पूरे शब्द हमारे ऐसे हैं। अहिंसा हो कि हिंसा हो। अहिंसा में, शब्द में हमारे हिंसा जरूरी है। हिंसा शब्द में अहिंसा आवश्यक नहीं। लेकिन यह बड़े मजे की बात है कि हिंसा, बिना अहिंसा के नहीं हो सकती। हिंसा के होने के लिए अहिंसा बिल्कुल ही अनिवार्य तत्व है। नहीं तो हिंसा का अस्तित्व नहीं हो सकता। हालांकि अहिंसा बिना हिंसा के हो सकती है। उसके लिए कोई जरूरी नहीं हिंसा का होना। भाषा हम बनाते हैं और अपने हिसाब से बनाते हैं। हमारे लिए संसार हो सकता है बिना परमात्मा के, परमात्मा कैसे बिना संसार के हो सकता है?

परन्तु ये दो चीजें अलग नहीं हैं। इसलिए इसमें जो विराट है वह क्षुद्र के बिना हो सकता है। लहर के बिना, सागर के होने में कोई भी बाधा नहीं,

लेकिन लहर कैसे होगी सागर के बिना ? लहर इतनी छोटी है, और अपने होने के लिए चारों तरफ सागर से बंधी है। सब तरफ सागर उसको पकड़े हुए है, तभी वह है। सब तरफ सागर ने उसको उठाया तो ही वह है। सब तरफ सागर उसको सम्हाले है तो ही वह है। सागर छोड़ दे तो वह गयी। सागर हो सकता है। उसने लहर को सम्हाला है, इसलिए लहर के होने का कोई सवाल नहीं। ये दो अलग नहीं हैं, लेकिन फिर भी मैं कहता हूं अलग हैं। अलग इसलिए कहता हूं कि लहर को भ्रम न हो जाय—वह अपने को अमृत और निराकार और शाश्वत न समझ ले। अलग है तो भ्रम हो सकता है। भ्रम की कठिनाई पैदा हो सकती है। अगर एक ही है तो भ्रम नहीं होगा। और अगर एक का ऐसा अनुभव हो, तब तो फिर वह कहेगी, मैं हूं ही नहीं, सागर ही है। जैसे जीसस बार बार कहते हैं कि मैं कहां हूं, वही है पिता जो ऊपर है। मैं नहीं हूं, वही है। इसमें हमें दिक्कत होती है। हमें बहुत कठिनाई होती है। क्योंकि या तो वो ऊपर पिता को खोजना चाहते हैं कि वह कौन है ऊपर, कहां है ? और या फिर इस आदमी को हम पागल समझते हैं कि आखिर क्या कह रहा है। तुम्हीं तो हो, और कौन है ? पर जीसस यही कह रहे हैं कि लहर मैंने देखी, सागर में। तो हमें लहरों के सिवाय किसी चीज का कभी कोई दर्शन नहीं हुआ। इसलिए सागर हमारे लिए सिर्फ शब्द है। जो है वस्तुतः वह हमारे लिए केवल शब्द है, और जो मात्र दिखायी पड़ता है वह हमारे लिए सत्य है। इसलिए मैंने कहा कि शरीर मरणधर्मा है, मृत्यु है। चैतन्य—चिन्मय मरणधर्मा नहीं है वरन अमृत्व है। और इस अमृत्व के ऊपर ही सारी मृत्यु का खेल है।

सागर और लहर को तो हमें समझने में कठिनाई नहीं होती क्योंकि हमने कभी सागर और लहर में इतनी दुश्मनी नहीं मानी। लेकिन मृत्यु और अमृत में हमें बड़ी मुश्किल होती है क्योंकि हमने बड़ी दुश्मनी मान रखी है। दुश्मनी हमारी मानी हुई है। सागर और लहर, जब मैं कहता हूं तो आपको कठिनाई नहीं होती, आप कहते हैं बड़े निकट के अस्तित्व हैं, ठीक कहते हैं। लेकिन मृत्यु और अमृत्व बड़े विपरीत हैं। पदार्थ और परमात्मा तो बड़े विपरीत हैं। जन्म और मृत्यु तो बड़े विपरीत हैं, ये एक नहीं हो सकते। ये भी तो एक ही हैं। मृत्यु को भी जितना गहरे जाकर जानेंगे, पायेंगे परिवर्तन से ज्यादा नहीं है। लहर भी परिवर्तन से ज्यादा नहीं है। अमृत को भी जितना खोजेंगे, पायेंगे वह शाश्वतता, 'इटरनिटी' है, और कुछ नहीं है। इस जगत में जो जो हमें विपरीत

दिखायी पड़ता है वह अपने विपरीत पर ही निर्भर होता है। हमारे दिखायी पड़ने में, विपरीत के कारण बड़ी अड़चन है। हम मृत्यु को और अमृत को बिल्कुल अलग रखते हैं। लेकिन मृत्यु हो नहीं सकती अमृत के बिना। उसको भी होने के लिए अमृत से ही थोड़ा सहारा उधार लेना पड़ता है। जितनी देर होती है उतनी देर भी अमृत के कन्धे पर हाथ रखना पड़ता है। झूठ को भी थोड़ी दूर चलना हो तो सत्य के कन्धे पर थोड़ा हाथ रखना पड़ता है। झूठ को भी थोड़े कदम रखने हों तो उसको कहना पड़ता है, मैं सत्य हूं। सत्य शायद दावा नहीं करता कि मैं सत्य हूं; लेकिन झूठ सदा दावा करता है कि मैं सत्य हूं। बिना दावे के वह चल नहीं सकता इंच भर। इंच चला कि गिरा। उसको चिल्ला के घोषणा करनी पड़ती है कि सम्हल जाओ, मैं आ रहा हूं, मैं सत्य हूं। वह सब प्रमाण लेकर साथ चलता है कि मैं सत्य क्यों हूं। सत्य कोई प्रमाण लेकर नहीं चलता। उसके लिए झूठ के सहारे की कोई भी जरूरत नहीं है। वह सहारा लेगा तो दिक्कत में पड़ेगा, झूठ सहारा न लेगा तो दिक्कत में पड़ जायगा। अमृत के लिए मृत्यु के सहारे की कोई भी जरूरत नहीं है, लेकिन मृत्यु की घटना तो अमृत के सहारे ही घटती है। शाश्वत के लिए परिवर्तन की कोई जरूरत नहीं, लेकिन परिवर्तन की घटना शाश्वत के बिना नहीं हो सकती। इतना जरूर तय है कि वह जो परिवर्तनशील है वही हमारी स्थिति है, और हम सिर्फ परिवर्तनशील को ही जानते हैं। इसलिए जब भी शाश्वत के संबंध में सोचते हैं तो हम परिवर्तनशील से ही कुछ अनुमान लगाते हैं। और कोई उपाय नहीं है। हमारी हालत ऐसी है जैसा कि अंधेरे में खड़ा आदमी अंधेरे से ही प्रकाश का अनुमान लगाये। उसके पास और कोई उपाय नहीं है। यद्यपि अंधकार भी प्रकाश का ही धीमा रूप है। अंधकार भी, प्रकाश के बहुत कम होने की स्थिति है। कोई अंधकार ऐसा नहीं है जहां प्रकाश न हो। क्षीण होगा, और क्षीण भी कहना ठीक नहीं, सिर्फ हमारी इंद्रियों की पकड़ के लिए क्षीण है। हमारी इंद्रियां नहीं पकड़ पातीं। अन्यथा हमारे पास से इतने बड़े प्रकाश के बवण्डर निकल रहे हैं जिसका कोई हिसाब नहीं कि हम देख लें तो हम अंधे हो जायं। लेकिन हमारी इंद्रियां उनको नहीं पकड़ पातीं। अंधेरा हो जाता है। जब तक एक्स-रे नहीं थी, हम सोच भी नहीं सकते थे कि आदमी के भीतर भी किरणें आरपार हो रही हैं। हम सोच भी नहीं सकते थे कि आदमी के भीतर की हड्डी की तस्वीर भी किसी दिन बाहर आ जायगी। आज नहीं कल, और गहरी किरण खोज ली जायगी और हम एक बच्चे के, मां के पेट में जो पहला अणु है उसके,

आरपार किरण को डाल सकेंगे किसी दिन, तो हम उसकी पूरी जिन्दगी देख लेंगे कि वह क्या क्या हो जायगा। इसकी सारी संभावनाएं हैं।

हमारे पास से बहुत तरह का प्रकाश गुजर रहा है, हमारी आंख नहीं पकड़ रही है। नहीं पकड़ती है, इसलिए हमारे लिए अंधेरा है। जिसे हम अंधेरा कहते हैं उसका कुल मतलब इतना ही है कि ऐसा प्रकाश जिसे हम नहीं पकड़ रहे हैं। इससे ज्यादा नहीं। लेकिन फिर भी अंधेरे में खड़े होकर कोई आदमी प्रकाश के बाबत जो भी अनुमान लगायेगा वह गलत होंगे। माना कि अंधेरा, प्रकाश का ही एक रूप है। माना कि मृत्यु भी अमृत का एक रूप हैं। फिर भी मृत्यु से अमृत के बाबत जो भी अनुमान लगाये जायेंगे वे गलत होंगे। हम अमृत को जान लें तो ही कुछ होता है, अन्यथा कुछ भी नहीं होता।

मृत्यु से घिरे हुए व्यक्ति अमृत से जो मतलब लेते हैं उनका मतलब इतना ही होता है कि हम नहीं मरेंगे, जो कि बिलकुल गलत है। मृत्यु से घिरा हुआ व्यक्ति अमृत से एक ही मतलब लेता है कि मैं नहीं मरूंगा। अमृत का मतलब है अमर, मैं मरूंगा नहीं। पर वास्तव में जो जानता है अमृत को, उसका मतलब है कि मैं कभी था ही नहीं। जो नहीं जानता वही कहता है मैं कभी होऊंगा ही, सदा रहूंगा। मैं कभी भी नहीं, नहीं होऊंगा। लेकिन उन दोनों का फर्क बुनियादी है, गहरा है। मरने को जानने वाला आदमी कहेगा कि ठीक पक्का हो गया न, कि आत्मा अमर है? फिर मैं कभी नहीं मरूंगा। वह हमेशा फ्यूचर ओरिएंटेड होगा। उसका जो मतलब होगा, वह भविष्य में होगा। वह समझता है मैं कभी नहीं मरूंगा। जो आदमी जान लेगा अमृत को वह कहेगा मैं कभी था ही नहीं, मैं कभी हुआ ही नहीं। वह हमेशा पास्ट ओरिएंटेड होगा। इसलिए, चूंकि सारा विज्ञान हमारा मृत्यु के हाथ में घिरा हुआ है, इसलिए सारा विज्ञान भविष्य की बात करता है। और सारा धर्म, चूंकि अमृत के आस-पास घिरा था, इसलिए वह अतीत की बात करता है – ओरिजिन की, एंड की नहीं। स्रोत, मूल स्रोत क्या है? धर्म कहता है, जगत कहां से पैदा हुआ, कहां से हम आये? क्योंकि धर्म कहता है कि हम अगर इस बात को ठीक से जान लें कि जहां से हम आये हैं वह स्रोत क्या है, तो हम निश्चिन्त हो जायेंगे कि कहां हम जायेंगे। क्योंकि जहां से हम आये हैं उससे अन्यथा हम जा नहीं सकते। जो हमारा मूल है वही हमारी डेस्टिनी है, वही हमारी नियति है, वही हमारा अन्त है। जो हमारा आदि है वही हमारा अन्त है। इसलिए सारे धर्म की चिंतना आदि की खोज में है। हू इज दि ओरिजन, जगत आया कहां से? अस्तित्व कहां से पैदा

हुआ, आत्मा कहां से आयी, सृष्टि कहां से हुई ? सारी चिंतना धर्म की, पीछे की खोज है, आखिरी की। और सारा विज्ञान आगे की खोज है —हम जा कहां रहे हैं, हम पहुंचेंगे कहां ? हम हो क्या जायेंगे ? कल क्या होगा ? अंत क्या है ? उसका कारण यह है कि विज्ञान की सारी खोज मरणधर्मा कर रहा है। धर्म की सारी खोज उनकी है जिनकी मृत्यु की बात समाप्त हो गयी है। और मजे की बात यह है कि मृत्यु सदा भविष्य में है। मृत्यु का अतीत से कोई लेना-देना नहीं है। जब भी आप मृत्यु के संबंध में सोचेंगे अतीत का कोई सवाल ही नहीं। बात ही खतम हो गयी। मृत्यु सदा आनेवाले कल में है। और जीवन जहां से आया है वह सदा कल था। जहां से जीवन आ रहा है, जहां से गंगा आ रही है वह तो गंगोत्री से आ रही है। जहां गिरेगी, वह सागर है। जहां मिटेगी, वह कल है। जहां बनी है, वह कल था।

मृत्यु से घिरा आदमी जो भी अर्थ निकालेगा वह मृत्यु के ही अनुमान होंगे। इसलिए दूसरे तल की बात पहले तल का अनुमान नहीं है। दूसरे तल की बात दूसरे तल का अनुभव है। यह भी बहुत मजे की बात है कि जो दूसरे तल को जान लेता है वह पहले को तो जानता ही है, लेकिन जो पहले को जानता है वह जरूरी रूप से दूसरे को नहीं जानता है। इसलिए अगर हमने बुद्ध, महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट को प्रज्ञावान कहा, बुद्धिमान कहा, तो हमारा उन्हें बुद्धिमान कहने का कारण दूसरा है। वे दो तलों को जानते है, हम एक तल को जानते हैं। इसलिए उनकी बात हमसे ज्यादा अर्थपूर्ण है। क्योंकि जितना हम जानते हैं उतना तो वे जानते ही हैं। इसलिए तो अड़चन नहीं है। उन्होंने भी मृत्यु को जाना है। उन्होंने भी दुःख जाना है, उन्होंने भी क्रोध जाना है, उन्होंने भी हिंसा जानी है। उतना तो वे जानते ही हैं जितना हम जानते हैं। लेकिन वे कुछ और भी जानते हैं जो हम नहीं जानते। इसलिए पूरब के मुल्कों में सदा ही विज़डम जो है, प्रज्ञा जो है, वह उसको कहना चाहिए, तल परिवर्तन है। पश्चिम के मुल्कों में ज्ञान जो है वह उसी तल पर एक्यूमुलेशन है, उसी तल पर। आइंस्टीन कितना ही जानता हो, हम जो जानते हैं, हममें और उसमें केवल क्वांटिटेटिव अंतर है। कितना ही जानता हो। हम इस टेबल को ही नाप पाते हैं, उसने सारे विश्व को नाप दिया। बाकी ये जो अन्तर है यह परिमाण का है, मात्रा का है। कोई गुणात्मक अंतर नहीं है। यानी कुछ ऐसा वह नहीं जानता है जो कि मुझसे भिन्न है। हां, मेरे का ही विस्तार है। मैं कम जानता हूं, वह ज्यादा जानता है। मेरे पास रुपया

है, उसके पास करोड़ रुपये हैं। लेकिन जो मेरे पास है उससे भिन्न उसके पास नहीं है। उसकी ही और ज्यादा राशि है।

बुद्ध और महावीर को जब हम कहते हैं ज्ञानी तो हमारा मतलब यह नहीं है। यह भी हो सकता है कि हमारे तल पर हम ही उनसे ज्यादा जानते हैं। नहीं, लेकिन हमारा उन्हें ज्ञानी कहने का मतलब है कि वे दूसरे तल पर कुछ जानते हैं जिसको हम कुछ भी नहीं जानते। एक नयी यात्रा उन्होंने शुरू की है जो क्वालिटेटिव अंतर है। इसलिए ऐसा हो सकता है कि महावीर को आइंस्टीन के सामने खड़ा करें तो आइंस्टीन जो जानता है उस मामले में महावीर बहुत ज्यादा ज्ञानी सिद्ध न हों। उतना एक्यूमुलेशन उनके पास नहीं है। वे कहेंगे मैं तो टेबल ही नाप सकता हूं। तुम सारे संसार को नाप देते हो। तुम दूर चांद-तारे की लम्बाई बता देते हो, बाकी मैं नहीं बता सकता। मैं तो इस कमरे को ही नाप लूं तो बहुत है। लेकिन फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि तुम मुझसे ज्यादा ज्ञानी नहीं हो। लेकिन तुम जो जानते हो वह कंसीवेबल है। उसमें कोई ऐसा मामला नहीं है कि अगर कमरा नापा जा सकता है तो तारे भी नापे जा सकते हैं। इसमें कहीं कोई क्रांति घटित नहीं हो गयी है। आइंस्टीन के भीतर कोई न्यूटेशन नहीं हो गया है। यह कोई दूसरा आदमी नहीं है। यह आदमी वही है। हां, उसमें ही ज्यादा कुशल है जिसमें हम अकुशल हैं। उसमें ही ज्यादा गतिमान है जिसमें हम मंद-गति में है। उसमें ही दूर तक गया जिसमें हम थोड़ी दूर गये हैं। उसमें ही गहरा गया जिसमें हम बाहर से ही लौट आये। लेकिन कहीं और नहीं है उसका प्रभाव।

बुद्ध या महावीर या उस तरह के लोग जिनको हमने बुद्धिमान कहा उनसे हमारा प्रयोजन है कि वह जो तल है जानने का, मृत्यु का, उसके पार वे वहां गये जहां अमृत है; और उनकी बात का मूल्य है। एक आदमी जिसने कभी शराब नहीं पी उसकी बात का बहुत मूल्य नहीं है कि वह क्या कह रहा है। एक आदमी, जिसने शराब पी है उसकी बात का भी बहुत मूल्य नहीं है। लेकिन एक आदमी जिसने शराब पी, और शराब के पार भी गया, उसकी बात का बहुत मूल्य है। जिसने शराब पी नहीं वह बचपन में है, उसने कोई प्रौढ़ता नहीं पायी। उसका वक्तव्य चाइल्डिश है। इसलिए शराब नहीं पीने वाले कभी भी शराब पीने वालों को समझा नहीं पाते। क्योंकि नहीं पीने वाले चाइल्डिश मालूम होते हैं, बचकाने। शराब पीने वाला जानता है और कह सकता है कि हम तुमसे ज्यादा जान गये हैं। तुम जो जानते हो वह हमने भी जाना है। अगर तुम भी पीकर देखो तभी तुम कुछ कह सको। लेकिन जिसने शराब पी और छोड़ी, शराब

पीने वाला उसकी बात का मूल्य करता है। यूरोप और अमरीका में एक संगठन है शराब पीने वालों का। 'अल्कोहलिस्ट अनानिमस' एक बहुत व्यापक आन्दोलन है। इसमें सिर्फ वे ही लोग सम्मिलित हो सकते हैं जो शराब में गहरे गये हैं। और यह शराब छुड़ानेवालों का आन्दोलन है, लेकिन सिर्फ शराब पीने वाले ही सम्मिलित होते हैं। और यह हैरानी की बात है कि शराब पीने वालों की मंडलियां किसी भी नये शराब पीने वाले को फौरन शराब छुड़वा देती हैं। क्योंकि वह मेच्योर है। शराब पीने वाला उसकी बात समझ पाता है। क्योंकि वह जो कह रहा है वह कुछ अनुभवी है। गैर अनुभव से नहीं कह रहा है। उसने भी पिया है और वह भी इसी तरह गिरा है, वह भी इन्हीं कठिनाइयों से गुजरा है, और पार हुआ है। उसकी बात का कोई मूल्य है। फिर भी मैंने यह उदाहरण के लिए कहा है। क्योंकि शराब पियो, कि न पियो, कि पीने के बाद छोड़ दो, बहुत तल का फर्क नहीं है। हां, एक तल के भीतर ही सीढ़ियों का फर्क है। लेकिन एक बार अमृत का अनुभव हो जाय तो सारा तल परिवर्तित हो जाता है। अगर बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट जैसे लोगों की बात का इतना गहरा परिणाम हुआ तो उसका कारण यह था। हम जो जानते थे, वे जानते ही हैं। हम जो नहीं जानते हैं वह भी वे जानते हैं। और जो उन्होंने नया जाना है उस नये जानने से वे कह रहे हैं कि हमारे जानने में भी बुनियादी भूलें हैं। ●

आचार्यश्री रजनीश की सृजनात्मक जीवन-दृष्टि

का

मासिक पत्र

युक्रांद

मानसेवी सम्पादक:

अरविन्द कुमार

एक प्रति: १ रुपया ✻ वार्षिक शुल्क: १२ रुपये

देश के कोने-कोने में विक्रय एजेन्ट नियुक्त करना है

सम्पर्क करने तथा शुल्क भेजने का पता:

अरविन्द कुमार, सदस्य युक्रांद प्रकाशन समिति,

कमला नेहरू नगर, जबलपुर (म. प्र.) फोन: २१५७

एक उड़ान —जो सत्य भी, कल्पित भी

बह्मदत्त

नाचो, लोगों नाचो!

सीपियों के समान बड़े-बड़े नेत्र खुले। लम्बी-लम्बी काली पलकें झपकीं और फिर खुल गयीं, जैसे फूलों पर बैठे भंवरे सहसा आहट पाकर उड़ गये हों। सिर घुमाकर उन्होंने अपने चारों ओर देखा और फिर बिना पृथ्वी पर हाथ टेके, पद्मासन छोड़ उठ खड़े हुए। उन्होंने मात्र एक श्वेत अधोंशुक ही कटि से धारण कर रक्खा था। गुफा के एक कोने में कुछ ऊंचाई पर उत्तरीय गुड़ामुड़ा पड़ा था। बाहर से आ रहे हल्के प्रकाश में उनका शरीर कद्दावर दिखायी दे रहा था। पूरी काया रोमराजी से आच्छादित थी। सिर के केश कंधों तक लहरा रहे थे। घनी दाढ़ी और मूंछों से चेहरा भरा हुआ था किन्तु प्रशस्त ललाट कृष्ण-मेघों से घिरे चन्द्रमा के समान प्रकाशमान था। केवल ललाट ही नहीं, सम्पूर्ण मुख-मण्डल एक अनुपम, अद्भुत, अलौकिक प्रभा से देदीप्यमान हो रहा था। वह तेजोमय चेहरा अत्यंत विलक्षण था। दिखने में प्रस्तर-सा किन्तु जिससे करुणा उठी हुई गंगा के समान छलक रही थी।

कुछ क्षणों तक वे अनिमेष शून्य में देखते खड़े रहे। फिर उनके पीपल के नवपल्लवों की भांति रक्ताभ होठों पर एक महीन मुस्कराहट जन्मी। उनका सिर किसी अदृश्य प्रेरणा से किंचित् बायीं ओर को झुका। बायां हाथ धीरे से ऊपर उठा और बायें गाल के अत्यंत निकट आकर रुक गया। अत्यंत धीमी गति से उन्होंने तर्जनी-मुद्रा धारण की। प्रदेशिनी अंगुली ऊर्ध्वगत हुई।

बाहर, रात्रि के सुनसान में सहसा स्वामी को समक्ष पाकर अभिसारिका की भयाकुल चीख के समान, मेघरहित आकाश में बिजली कड़कड़ायी!

० ० ० ०

इतवार का दिन न होता तो वे सब चौंकते नहीं। पर इतवार का दिन था और फोर्ट-क्षेत्र इतवार के दिन लगभग सूना ही रहता है। सीधी सपाट सड़क थी। आसपास न तो कोई गली थी, न ही कहीं कोई दुकान खुली हुई थी। उन लोगों को अच्छी तरह याद था कि उनके आगे कोई नहीं चल रहा था। सीधी सुनसान सड़क पर वह व्यक्ति अचानक ही उन लोगों के आगे प्रगट हो गया था। कंधों को थोड़ा आगे की ओर झुकाये एक हाथ से श्वेत गोल धोती को सम्हाले और दूसरे हाथ से कंधों पर पड़ी श्वेत चादर को वक्षस्थल के पास पकड़े हुए, वह एकदम खामोश उन लोगों के आगे चल रहा था। वे सब एकाएक उसे अपने आगे देखकर पहले तो चौंक पड़े थे फिर न जाने क्यों सबों को, छोटे-छोटे बच्चों तक को आपादमस्तक एक सिहरन-सी महसूस हुई थी। पूरा परिवार चलते-चलते रुक गया और फिर उस व्यक्ति और अपने मध्य एक फासला रखकर चलने लगा।

उस व्यक्ति ने पीछे पलटकर नहीं देखा। वह किसी गहन-चिंता में सिर झुकाये उसी तरह चलता रहा। सिर के लम्बे-लम्बे बालों से गर्दन ढंकी हुई थी। पीछे चलने वाले उस परिवार को चेहरा तो नहीं दिखायी दे रहा था किन्तु दाढ़ी-मूंछों के केश और विशाल ललाट का अनुभव सबों को बिना देखे ही हो रहा था।

'ये बाबाजी कहां से आ गये एकदम?' दल के प्रमुख दिखायी देते प्रौढ़ ने कहा।

'जैसे आसमान से आ उतरे।" एक युवती ने धीरे से कहा।

'हां, मालूम पड़ता है हवाओं ने कहीं से ला उतारा।" युवती के साथ चल रहे युवक ने कहा।

'बड़ा अजीब-सा...।' सिर पर हाथ फिराते हुए दूसरे प्रौढ़ ने कहा।

'भूत तो नहीं है?' परिवार के सबसे तरुण दिखायी देते युवक ने ठठाकर हंसते हुए कहा।

'धीरे बोल---।'

'ऐसा नहीं कहना चाहिये।' परिवार के सभी बड़ों का दिल एक अनजानी आशंका से अनायास ही धड़क उठा।

'अरे भूत ही है।-- एकदम भूत---।' नवयुवक और जोर से हंसा।

'देखो---।' परिवार की प्रौढ़ा चिल्लायी।

हंसनेवाले नवयुवक के सिर के बाल हवा में कांटे की तरह सीधे खड़े हो गये थे। सफाचट मूंछों के स्थान पर ड्रामाई स्टाइल के रावण की मूंछों की तरह उसके होंठ के ऊपर, गालों तक काजल की मोटी रेख से किसी अदृश्य उंगली ने मूंछें बना दी थीं।

आगे जा रहे उस अद्भत व्यक्ति ने पीछे पलटकर देखा। झील का शांत जल तेज वायु चलने पर जैसे स्फुरित होता है वैसे ही उस भव्य चेहरे पर अत्यंत द्रुतगति से स्फुरण हुए और वे खिलखिलाकर हंस पड़े।

ढेरों पुष्प सड़क पर बिखर गये।

० ० ० ० ० ०

सुगन्धि पुष्पों की ही थी। पर किन पुष्पों की, यह निर्णय करना असंभव था। भूलेश्वर का भीड़ भरा और तंग मार्ग विचित्र सुगन्धियों से सहसा भर उठा था। सुगन्धियों का उद्गम अज्ञात था और किसी को पता लगाने की चिंता भी न थी। सायंकाल का समय था। दुकानदार अत्यधिक व्यस्त थे। गृहिणियां सौदा-सुलफ में लगी थीं। काम-धन्धे से आ रहे थके मांदे व्यक्ति तेजी से घरों को लौट रहे थे। वृद्धजन, धर्म-भीरु स्त्रियां और संकटग्रस्त संसारी मन्दिरों में आ-जा रहे थे। भूलेश्वर में फूलगली थी और फूलगली में फूलों का बाजार था, किन्तु भूलेश्वर-क्षेत्र में छाई उस विचित्र सुगन्धि का उद्गम-स्थल वह गली नहीं थी।

लोगों के नासिका-रन्ध्रों में सुगन्धियां भर रही थीं और लोग अनजाने में ही आनन्दित हो रहे थे पर सभी यंत्रों के समान व्यस्त थे। किसी का ध्यान उस साधु जैसे दिखायी देते व्यक्ति की ओर नहीं था जो कंधों को थोड़ा-सा झुकाये, श्वेत गोल धोती को एक हाथ से और पीठ पर पड़ी श्वेत चादर को दूसरे हाथ से सम्हाले भूमि की ओर देखते हुए मन्थर गति से चला जा रहा था।

कबूतरखाना के पास आकर वह साधु रुक गया। कबूतरों से ठसाठस भरे कबूतरखाने में तूफान आ गया। पंखों को बड़े जोरों से फड़फड़ाकर वे सब एक साथ उड़े। कबूतरखाने का वह अत्यन्त भीड़भरा सक्रिय चौराहा सहमकर वहीं

का वहीं थम गया। लोग हैरान रह गये। जब उन्होंने देखा कि कबूतरों का वह सैलाब आसमान की ओर जाने की बजाय पृथ्वी से सिर्फ चार फुट ऊपर उठा और उस श्वेत वस्त्रधारी महातेजस्वी दिखाई देते साधु के चरणों के चारों ओर फैल गया। पक्षियों के उस जीवंत द्वीप में वह प्रकाश-स्तंभ के समान शोभायमान लग रहा था, किन्तु प्रकाश-स्तंभ कभी मुस्कराता नहीं और वह अद्‌भुत व्यक्ति मुस्करा रहा था।

चारों ओर से सन्नाटा छा गया। लोग सन्न रह गये। एक स्त्री न अपनी कलाई को दांतों से जोरों से काटा। एक तरुण ने अपने गाल पर कसकर चुटकी भरी। एक वृद्ध ने अपनी आंखों को उंगलियों से मसल डाला।

इसके पहले कि लोग होश में आते वह परमपुरुष अपने बड़े-बड़े नेत्रों से हंसता हुआ पृथ्वी से ऊपर उठा।

० ० ० ० ०

जैसे कोई हेलिकोप्टर उतर रहा हो। बांध पर बैठे प्रेमालाप में निमज्जित प्रेमी युगल आश्चर्यचकित हो अपने आगे की भूमि देखने लगे। फुटपाथ की धूल एक गोल घेरे में तेजी से घूमकर छिटक रही थी। युवक को लगा कि उसने हवा में किसी श्वेत-वस्त्र को लहराते देखा और युवती ने स्पष्ट अनुभव किया कि उसने एक अद्‌भुत प्रकाश से प्रदीप्त चरण-युगलों को पृथ्वी पर उतरते देखा। किन्तु दोनों निश्चयपूर्वक कुछ कह नहीं सके क्योंकि हाजीअली के उस समुद्र-तट पर उनके दायें और बायें कम-से-कम एक-एक फर्लांग दूर तक कोई न था। हां, एक चनेवाला जरूर अपनी पाटी उठाये सामने सड़क पार कर रहा था। दोनों प्रेमी सिहर उठे। बिना एक दूसरे से कुछ बोले अनजाने में ही दोनों अपने बीच एक सभ्य फासला रखकर बैठ गये।

मौसम बड़ा खुशनुमा था। समुद्र की ओर से हल्की-हल्की हवा बह रही थी। समुद्र में स्थित हाजीअली की दरगाह और उस तक जाने का मार्ग बिजली के लट्टुओं से जगमगा रहा था। सूर्यास्त हुए काफी समय व्यतीत हो चुका था किन्तु आकाश में अभी भी कुंकुम बिखरा हुआ था। प्रेमी-युगल सागर की ओर पीठ किये हुए बैठे थे। एकाएक युवक ने चौंककर अपनी बायीं ओर देखा। उनसे लगभग बीस कदम दूर एक श्वेत वस्त्र-धारी, साधु जैसा दिखायी देता व्यक्ति समुद्र की ओर मुख किये, बांध पर पैर लटकाये हुए बैठा था।

जैसे कंकड़ लगने पर गाय की पूरी खाल थरथराती है, उस युवक की त्वचा ऊपर से नीचे तक कंपायमान हुई। उसने अपनी बर्फ की तरह हो गयी उंगलियों

से युवती की एक कुहनी को स्पर्श किया। युवती आंखें मूंदकर तीव्र गति से लम्बी-लम्बी सांसें ले रही थी मानों कोई पशु दौड़ते-दौड़ते थक कर हांफ रहा हो। युवक घबड़ा गया। उसने एक बार बायीं ओर उस रहस्यमय साधु की ओर देखा और उठ खड़ा हुआ। उसने युवती के कंधों को पकड़कर जोरों से झकझोरा। युवती पर कोई असर नहीं हुआ। उसकी आंखें उसी तरह बंद रहीं। मूर्च्छित व्यक्ति के समान वह पृथ्वी पर गिरने को हुई। युवक ने उसे दोनों हाथों से लपेट लिया। उसके चेहरे का रंग उड़ गया। वह युवती का नाम लेकर पुकारना चाहता था किन्तु उसकी जीभ तालू से जा लगी थी। सहायता के लिए उसने अपना सिर उठाया। सिर उठाते ही वह बुरी तरह चौंक गया। उसके कंठ से एक अमानवीय गरगराहट निकल गयी। वह अत्यंत भयभीत हो एक कदम पीछे हटा। निकट ही था कि युवती उसके हाथों से छूटकर जमीन पर गिर जाती किन्तु उठकर निकट आये उस रहस्यमय साधु ने अपने दाहिने हाथ की पांचों उंगलियां उस युवती के सिर पर गड़ा दीं।

युवक अवाक् खड़ा हो उस भव्य-पुरुष को निर्निमेष देखने लगा। युवती धीरे-धीरे शान्त हो गयी। अभी भी उसकी आंखें मुदी हुई थीं किन्तु सांसें अब मंदगति पर आ गयी थीं। दिव्य पुरुष के करुणामय चेहरे पर मनोहारी मुस्कराहट की छटा उभरी। उन्होंने युवक की ओर देखा। धीरे से सिर को घुमाकर युवती की ओर आंखों से इशारा किया और चल पड़े। युवती ने आंखें खोल दीं।

विस्फारित-नेत्रों से युवक ने उस जाते हुए महापुरुष की ओर देखा। उनकी दोनों हथेलियों से कुंकुम झरकर पृथ्वी पर गिर रहा था।

० ० ० ०

ऐसी रक्तवर्णी हथेलियां दोनों मित्रों ने पहले कभी नहीं देखा थीं। पहले तो दोनों ने यही समझा कि कोई रंग लगा होगा, पर फिर न जाने क्या बात थी कि वे दोनों तेजी से आगे बढ़कर उस श्वेत लुंगी और श्वेत चादरधारी व्यक्ति के पीछे अति निकट जा पहुंचे थे। साधु-सा दिखायी देता वह व्यक्ति अत्यंत धीमी गति से, पृथ्वी की ओर देखता हुआ, दोनों हाथों को पीठ पीछे रक्खे हुए अपने ख्यालों में डूबा चला जा रहा था। निकट आकर दोनों मित्र हैरान रह गये। बड़े अद्भुत हाथ थे। महाबाहु। एक साथ कोमल और सशक्त। रक्त कमलों के समान हथेलियां! कर-कमल!

दोनों उन हथेलियों से जैसे सम्मोहित हो गये हों। लगातार देखते वे उस अद्भुत व्यक्ति के पीछे चलते रहे। एकाएक चौराहा आ गया। वे साधु-पुरुष बिना

दायें-बायें देखें, अर्ध-निमीलित नेत्रों से पृथ्वी की ओर देखते हुए फुटपाथ से उतर गये और सड़क-पार करने लगे। दोनों मित्रों की सांसें रुक गयीं। इस चौराहे पर सड़क-द्वीप होने के कारण ट्रेफिक-पुलिस अथवा सिग्नलों की व्यवस्था न थी। यातायात बहुत सघन था। चारों ओर से कारें मोटरें दौड़ रही थीं। पर वे महापुरुष अत्यंत निश्चितता से चलते रहे।

'देखिये!' एकाएक दोनों मित्र चीख पड़े। दाहिनी ओर से एक श्वेत रंग की अस्पताल की गाड़ी तेजी से आयी। दोनों युवकों के समस्त स्नायु तन गये। आंखें फटी-फटी सी हो गयीं। दांत बुरी तरह भिच गये। एम्बुलेंस किसी बुभुक्षित वन्य पशु की भांति अपने शिकार को हड़पने के लिये लपकी। एम्बुलेंस के आगे-पीछे दो अन्य कारें भी उसी समय तेजी से दौड़ती आयीं। उस भयानक दृश्य को न देखने के लिए दोनों मित्रों ने तड़प कर, आंखें मूंदने के लिये अपने हाथ ऊपर उठाये। पर उनके हाथ उठे के उठे रह गये। आंखें खुली की खुली रह गयीं। विस्फारित नेत्रों से दोनों ने देखा कि एक के पीछे एक आकर तीनों गाड़ियां उस विलक्षण पुरुष के आगे झटके ले लेकर रुक गयीं। कहीं आवाज नहीं। ब्रेक लगने की भी नहीं। बाकी दोनों कारें झटके से फिर चल पड़ीं किन्तु एम्बुलेन्स का ड्रायवर गाड़ी से नीचे उतर आया। वह अत्यंत क्रोधित हो गया था। भीतर ही भीतर वह कुछ हैरान भी था। क्योंकि बीच सड़क पर गाड़ी के ठीक सामने उस दाढ़ीवाले साधु को देखकर उसने समझ लिया था कि ऐक्सिडेंट हो गया। उसने भयंकर तेजी से ब्रेक दबाया था किन्तु न जाने क्यों उसे ऐसा लग रहा था कि उसके ब्रेक दबाने के पहले ही गाड़ी रुक गयी थी। वह साधु को गर्दनिया देने के लिये बुरी तरह झल्लाता हुआ आगे बढ़ा।

'मरना चाहता है क्या.....?' ड्रायवर ने हाथ उठाया और हाथ उठा का उठा रह गया। मुंह को जैसे लकवा लग गया। कंठ से किसी पशु की गुर्राहट-सी निकली और वह बीच सड़क में हवा निकले बैलून की तरह ढह गया!

ड्रायवर का साथी गाड़ी का दरवाजा खोलकर तेजी से उतरा और जमीन पर पड़े हुए ड्रायवर की तरफ दौड़ा। हहराते हुए करुणा के सागर वाले चेहरे पर मोहिनी मुस्कराहट लिये हुए वे दिव्य-पुरुष भी आगे बढ़े।

'क्या हो गिया? — ड्राइवर बेसुध पड़ गया। औफ्! अब क्या होयेंगा? गाड़ी में सीरियस केस पड़ेला है।' ड्रायवर का साथी किंकर्तव्यविमूढ़ हो बड़बड़ाया।

बिना कुछ बोले उस अद्भुत व्यक्ति ने झुककर ड्रायवर के शरीर को दोनों हाथों से यों उठा लिया, जैसे वह कोई कपड़ों की गुड़िया हो। एम्बुलेंस के पिछले भाग की तरफ वे उसे उठाये आये। ड्राइवर के साथी ने लपककर दरवाजा खोला। उसके हृदय में कुछ खुट्-सा हुआ। उसे लगा कि दरवाजे के हैन्डल को हाथ लगाने के पहले ही दरवाजा खुल गया किन्तु दूसरे क्षण वह इस बात को भूल गया और दरवाजे को अपनी ओर खींचकर, ड्रायवर के शरीर को भीतर रखने में उस साधुपुरुष को सहायता देने का प्रयत्न करने लगा।

'ड्राइविंग आता है तुमको ?' ड्रायवर के साथी ने मरीज के संबंधी से पूछा। संबंधी ने सिर हिलाया।

'पीछू हम टेलिफून करता है हाफिस कू।' वह तेजी से मुड़कर जाने लगा।

परमपुरुष ने उसके कंधे पर एक हाथ रख दिया। ड्रायवर के साथी को लगा जैसे वह हवा में तैरने लगा हो। उसने भारी पलकों से देखा। साधु-पुरुष गाड़ी के अगले भाग की ओर गये। दरवाजा खोला और ड्रायवर की सीट पर बैठ गये। ड्रायवर का साथी दूसरी तरफ से आया और चुपचाप अपनी सीट पर जा बैठा।

रहस्य-मय पुरुष ने स्टार्टर की ओर बायें हाथ का अंगूठा धीरे से बढ़ाया। गाड़ी का इंजन जोरों से घरघरा उठा। ड्रायवर के साथी ने जोरों से अपना सिर झटका। उसे लगा कि गाड़ी का इंजन स्टार्टर दबाने के पहले ही चल पड़ा। उसने सिर उठाकर उस विलक्षण व्यक्ति की ओर देखा।

मंद-स्मित से सुशोभित चेहरे से करुणा बरस रही थी।

० ० ० ० ०

आया एम्बुलेंस में : गया पैरों से चलकर

मस्तिष्क रक्तस्राव का मरीज एक रहस्यमय साधु के हाथ लगाते ही उठ बैठा। यह आश्चर्यजनक घटना सेंट लुई अस्पताल के दरवाजे पर घटित हुई। एम्बुलेंस को चलाकर लानेवाला भी वही असाधारण साधु था क्योंकि गाड़ी का ड्रायवर भी रास्ते में अचानक पक्षाघात से आक्रांत हो गया था। ड्रायवर भी उस रहस्यमय साधु के वहां से हटते ही स्वस्थ हो गया। अस्पताल के दरवाजे पर बहुत कम व्यक्ति थे पर जितने भी लोग थे, उन्होंने और मरीज के सम्बन्धी तथा चालक के साथी ने उस विलक्षण साधु का पीछा किया, किन्तु अत्यन्त द्रुतगति से चलकर वह साधु केम्प कार्नर के पास अदृश्य हो गया। मरीज के संबंधी का

ख्याल है कि उसने उस साधु को वुडलैंड एपार्टमेंट्स के अहाते में घुसते देखा है। इमारत के कर्मचारियों ने वहां किसी भी साधु के जाने या होने से इन्कार किया है।

—टाइम्स ऑफ भारत

शहर में घूमता अज्ञात दिव्य-पुरुष

आजकल शहर की सड़कों पर यदाकदा एक विचित्र योगी घूमता-फिरता दिखायी पड़ता है। शहर के कई अंचलों से अद्भुत घटनाओं के घटित होने की सूचनाएं प्राप्त हुई हैं। प्रत्यक्ष दर्शियों ने बताया है कि वह अलौकिक पुरुष केवल एक सफेद धोती और चादर में रहता है। चेहरे पर घनी दाढ़ी-मूंछें हैं। पर पूरे व्यक्तित्व में सर्वाधिक आकर्षित करनेवाला भाग है असाधारण रूप से विशाल ललाट। कहते हैं यह दिव्य मानव अद्भुत दैवी शक्तियों से परिपूरित है।

—फ्री प्रिन्टर्स जनरल

पूंजीवादियों ने नया गुल खिलाया

लगता है आगामी आमचुनाव में पूंजीपति वर्ग धर्म की आड़ लेगा। शहर में आजकल एक साधु के चमत्कारों की अफवाहें जोरों पर हैं। इसके पहले कि देश की गरीबी और अपढ़ जनता को कोई उल्लू बना जाये, हम सीधे केन्द्रीय-सरकार से जोरदार शब्दों में अपील करते हैं कि इस तथाकथित चमत्कारी साधु के बारे में पूरी-पूरी जानकारी हासिल कर जनता के सामने पेश करे।

—बिलैया की टांग
(एशिया का सबसे अधिक बिकनेवाला साप्ताहिक)

० ० ० ० ०

पूरे शहर में सन्नाटा छाया हुआ था। शहर की सारी गतिविधियां सदा के समान चल रहीं थीं किन्तु सब कुछ अत्यंत शांति से। निस्तब्धता का साम्राज्य था। एक अजीब सी सनसनी वायु में सनी हुई थी। घरों में, दुकानों में, सड़कों पर लोग-बाग जोर से बोलने में भी संकोच कर रहे थे। कानाफूसी में ही सारे वार्तालाप सम्पन्न किये जा रहे थे। सभी लोगों के चेहरों पर एक दहशत भरा कौतुहल परिलक्षित हो रहा था। गली-कूचों में स्थान-स्थान पर लोगों के छोटे-बड़े दल आकाश की ओर देखते थे।

आकाश मेघाच्छन्न था। बेमौसम ही सुबह बारिश हो गयी थी। तबसे लगातार बूंदा-बांदी हो रही थी। लोग हैरान थे। किसी अनजानी, अनचाही आशंका

से सभी आतंकित हो रहे थे। पर आतंकित होने के साथ-साथ सभी एक अप्रत्यक्ष आनंद से आलोडित और आश्चर्यचकित भी थे। आकाश से जल-बिन्दुओं की तरह कमल के फूल भी झर रहे थे। आरम्भ में तो ढेर के ढेर एक साथ बरसे थे। अब यदाकदा एक-एक कमल आसमान से टूटे हुए तारे की तरह पृथ्वी पर आ गिरता। ऐसा लगता था जैसे कोई बादलों के पीछे फूलों भरी टोकरी लिये खड़ा है और बीच-बीच में एक फूल नीचे फेंक देता है। कमलों की यह अप्रतिम, अप्रस्तुत और अप्रपन्न वर्षा पूरे शहर में हो रही थी।

शहरवासी टोलियां बना-बनाकर उस अद्भुत साधु की खोज कर रहे थे। कोई जानता न था किन्तु कमलों की इस अभूतपूर्व वर्षा का एकमात्र कारण वही विलक्षण योगी है ऐसी सबों की अनबोली मान्यता थी। पूरे राज्य की पुलिस भी सतर्क कर दी गयी थी किन्तु उस परम-पुरुष का कोई भी सूत्र कहीं से मिल नहीं पा रहा था। चारों ओर अफवाहों का बाजार गर्म था। हर आदमी को वह अलौकिक महापुरुष हर जगह दिखायी दे रहा था। किसी भी श्वेत-वस्त्रधारी या दाढ़ीवाले व्यक्ति का कहीं कोई मजाक नहीं उड़ा रहा था। राह पर चलते लोग अत्यधिक चौकन्ने होकर अपने आगे-पीछे अथवा अगल-बगल के व्यक्ति का सूक्ष्मता से निरीक्षण कर रहे थे। पर वह चमत्कारी योगी जैसे वायु में विलीन हो गया था। कहीं से भी कोई सूचना नहीं प्राप्त हो रही थी कि वह दिव्य-पुरुष कहां है।

दोपहर व्यतीत होते होते किन्तु यह समाचार विद्युत् गति से सारे शहर में फैल गया कि वह विचित्र-साधु चौपाटी की बालुकाराशि पर एक ऊंचे स्थान में पद्मासन लगाकर समाधिस्थ बैठा है। लोगों के दल के दल चौपाटी की ओर चल पड़े।

किसी सुहागिन नारी की मांग से झर रहे सिन्दूर-कणों की तरह आसमान से कमल पुष्प अभी भी बरस रहे थे।

० ० ० ० ०

पूरी चौपाटी भरी थी। लगता था एक एक रेतकण पर एक एक व्यक्ति बैठा हुआ है। एक तरफ जल का असीम, अथाह सागर हहरा रहा था, दूसरी ओर निस्तब्ध, निश्चेष्ट जन-सागर किसी रुकी हुई फिल्म की भांति निश्चल था। चारों ओर निपट शान्ति छायी हुई थी। चौपाटी और उसके इर्द-गिर्द सब कुछ एक अजीब खामोशी में लिपटा हुआ था। चौपाटी को आनेवाले हर रास्तों और पुलों से लोगों के रेले चौपाटी की ओर चले आ रहे थे जैसे छोटे

छोटे नदी–नाले बह बह कर झील में समा रहे हों। चौपाटी की मुख्य सड़क पर मोटर गाड़ियां चलना बंद हो गयीं। यातायात पूर्ण रूप से अवरुद्ध हो गया। बढ़ी हुई नदी के जल की तरह जनता सड़कों पर बिखरकर फैल गयी।

वे अद्भुत महापुरुष रेत के एक ऊंचे उठे हुए स्थान पर बैठे थे। जैसे जैसे जन – समुदाय बढ़ता चला गया वह रेत का ढेर ऊंचा उठता रहा। अंत में वह एक ऊंचे टीले में परिवर्तित हो गया। चौपाटी या सड़क की प्रत्येक दिशा से वे दिखायी पड़ रहे थे। वे सागर की ओर मुख किये बैठे थे। उत्तरीय से उनका समस्त शरीर ढंका हुआ था। नेत्र बंद थे। श्मश्रुपूर्ण चेहरा एक दिव्य आलोक से आलोकित था। लोग टकटकी बांधे उस अपूर्व अविचल मूर्ति को देख रहे थे। कभी वह मूर्ति इतनी बड़ी हो जाती की जिसका ओर-छोर नहीं मिलता था और कभी इतनी छोटी कि लगता जैसे उस टीले पर कोई है ही नहीं। लोगों के नेत्र अपने आकार से दुगुने चौगुने हो जाते। उनके भीतर से कुछ उठता और मुंह तक आ जाता।

एकाएक पूरी चौपाटी ने जैसे करवट ली। लोगों के मुंह से सीत्कार की बड़ी तीव्र ध्वनि निकली। आह-आह की गगनभेदी आवाज से पूरा वायुमण्डल गुंजारित हो गया। लोग हाथ उठाकर आसमान की ओर देखने लगे।

समुद्र की दिशा में आकाश से एक अत्यंत विशाल कमल नीचे उतर रहा था।

चारों ओर एक अलौकिक सुगंध व्याप्त हो गयी।

परम-पुरुष ने दोनों हाथ आसमान की ओर फैला दिये।

जोरों से बादल गड़गड़ाये।

वह विशाल कमल अत्यंत धीमी गति से आकर उनके फैले हुए हाथों पर उतर गया।

वायु में शहनाई की गूंज उभरी। मंजीर खनके। मृदंग थप-थपा उठे। बालू का टीला घूमा। परम-पुरुष का चेहरा जन सागर की ओर हुआ। होठों पर मंद मुस्कराहट। नेत्रों में सागर की अथाह शान्ति। चेहरे से बरसती करुणा की शीतल गंगा। चारों दिशाओं से मंगल-गान सुनायी पड़ने लगे!

परम-पुरुष ने धीरे से सिर ऊपर की ओर उठाया। सहसा आसमान साफ हो गया। कमल-पुष्पों की वर्षा बंद हो गयी। स्वर्गीय संगीत खो गया। पूरी चौपाटी पुनः शान्त हो गयी, जैसे झील के शांत जल पर से कोई मोटर बोट गुजर गयी हो और अब फिर से उसका जल शांत, अकम्पित हो गया हो।

० ० ०

'मैं तुम्हारे लिये कमल लाया हूं।' चौपाटी के एक छोर से दूसरे छोर तक, दोनों छोरों के पार दुकानों, मकानों और सड़कों पर उनकी परम-पुनीत वाणी गूंज गयी। जैसे सहस्रों लाऊडस्पीकरों से एक साथ आवाज निकली हो।

'मैं तुम्हारे लिये कमल का संदेश लाया हूं...प्रेम, शांति और जीवन का प्रतीक।' उन्होंने अपने हाथ के उस विशाल कमल को ऊपर उठाकर छोड़ दिया। कमल किसी विशाल पक्षी की तरह वायु में उठा और अधर में लटक गया।

'पर आप हैं कौन?' जन-मेदिनी से कोई चिल्लाया।

'हां-हां, आप हैं कौन?' जैसे चौपाटी अनेक पर्वतों से घिरी हुई हो। प्रतिध्वनियां ही प्रतिध्वनियां।

एक क्षण तक वे चुप रहे। शून्य में उनकी दृष्टि स्थिर हो गयी। फिर सिर को हल्के से उन्होंने बायीं ओर झटका। बायां हाथ उठा। तर्जनी-मुद्रा बनी और समस्त रसों से निर्मित वाणी में वे बोले, 'मैं स्वामी शशमौलि हूं।'

स्वामी शशमौलि। शशमौलि। शशमौलि।

वायु के कण-कण पुकार उठे।

'मैं स्वामी शशमौलि हूं, पर ध्यान रहे इस नाम का कोई व्यक्ति है नहीं।'

कोई व्यक्ति है नहीं। है नहीं। है नहीं।

जैसे अन्तरिक्ष से शब्द झर रहे हों।

'यह आप क्या कह रहें हैं?' प्रश्न सहस्र-मुखी होकर वातावरण में छा गया, 'आप आये कहां से हैं?'

आये कहां से हैं? कहां से हैं? कहां से हैं?

उनकी शाश्वत मुस्कराहट प्रखर हो गयी।

'मैं कहीं गया नहीं था।'

कहीं गया नहीं था। नहीं था। नहीं था।

नदी का जल पर्वत से गिरकर करोड़ों जलबिन्दुओं में परिवर्तित हो गया।

'आप क्या कह रहे हैं समझ में नहीं आता।'

समझ में नहीं आता । नहीं आता । नहीं आता ।

'मैं कहीं गया ही नहीं था तो आऊंगा कहां से । मैं तो पहले भी था। अभी भी हूं । आगे भी रहूंगा । मैं व्यक्तित्व नहीं, अस्तित्व हूं ।'

व्यक्तित्व नहीं अस्तित्व हूं । अस्तित्व हूं । अस्तित्व हूं।

सूर्य में एक अत्यंत शक्तिशाली विस्फोट हुआ और असंख्य प्रकाश–अणुओं से पूरी पृथ्वी स्नात हो गयी।

प्रकाश ही प्रकाश ।

अस्तित्व ही अस्तित्व ।

'मैं कौन हूं इसकी फिक्र छोड़ें । आप तो इसकी फिक्र करें कि आप कौन हैं? धर्म का अर्थ ही यह है कि आप जानें कि आप कौन हैं? आप क्या हैं? अपने स्वरूप को पहचानना और उसमें स्थिर हो जाना ही धर्म है । मैं आपको अपने स्वरूप का स्मरण दिलाने के लिये ही यहां उपस्थित हुआ हूं।' वे चुप हो गये ।

अबकी प्रतिध्वनियां नहीं आयीं । एक विचित्र निस्तब्धता छा गयी । पारदर्शी निस्तब्धता। जैसे कि निस्तब्धता के पार सुनायी दे रहा हो, दिखायी दे रहा हो । लोगों की आंखों में एक चमक उत्पन्न हो गयी । नाभि तले कुछ सुरसुराया जैसे सर्प कुंडली से बाहर निकल रहा हो ।

'आप क्या कहते हैं, ये हमारा स्वरूप नहीं है जिसमें अभी हम हैं ?' कोई अत्यंत उत्तेजना से चीखा ।

'नहीं ।' अत्यत शीतलता से स्वामी शशमौलि बोले, 'नहीं, यह आपका स्वरूप नहीं है । यह तो प्रतिक्षण बदलता जा रहा है । यह आपका स्वरूप कैसे हो सकता है? एक क्षण पहले जो आप थे, अब नहीं हैं । कैसे कह सकते हैं कि आप वही हैं जो मां के गर्भ में था, जो घुटनों के बल चलता था, जो पाठशाला या विश्वविद्यालय में पढ़ता था। नहीं, यह स्वरूप नहीं है । स्वरूप तो वह है जो जन्म के पहले था और मृत्यु के बाद होगा । जो कभी नहीं बदलता । जो कभी नहीं नष्ट होता । उसे जानें...।'

'क्या होगा उसे जानकर ? और जान ही कौन सकता है उसे?' किसी शंकालु ने अत्यंत धीमे स्वर में कहा, किन्तु उसकी आवाज पूरी चौपाटी में गूंज गयी जैसे कि उसने ये शब्द सहस्रों माइकों के सामने कहा हो।

स्वामी शशमौलि के होठों पर हंसी फूट पड़ी । लगा कि जैसे वन में फूल चिटख रहे हों, कि जैसे आकाश में तारे झिलमिलाकर निकल आये हों ।

'सब उसे जान सकते हैं और उसे जानकर दुःख मिट जाता है, मृत्यु का भय नहीं रहता। सत्य को न पाना ही दुःख है और आनंद को न पहचान पाना ही भय है। अपने स्वरूप को जानें और उसे जानते ही फिर सब कुछ मिट जाता है। सिर्फ आनंद ही शेष रह जाता है। अनंत आनंद। और आनंद में डूब जाना ही प्रभु को पा लेना है।'

'फिर बताइये, बताइये कैसे जानें हम उसे ?' असंख्य, अगणित कंठों ने समवेत स्वर से पूछा।

'अपने आपको मिटाकर ही उसे जाना जा सकता है। जो अपने को मिटायेगा वही पायेगा। बूंद सागर में गिर जाये तो सागर हो जाती है। मिटा दें। मिटा दें अपने आपको। खो दें बूंद को सागर में।' सहसा स्वामी शशमौलि की वाणी अत्यंत ओजस्वी और आकारी हो गयी।

'उस अज्ञात, अनंत, अथाह सागर के लिए मैं बूंद को निमंत्रित करता हूं। आओ, आओ। खो जाओ।'

दूर से कहीं उस अज्ञात सागर की गर्जना आती सुनायी दी।

० ० ०

'उस सागर के लिये कहीं दूर नहीं जाना है। वह तो सब जगह मौजूद है। यहीं और अभी। सिर्फ बूंद को खो जाने भर की तैयारी होनी चाहिये। मगर खो जाने में डर लगता है। खो जाना है ही भयानक। किन्तु धर्म कभी डरपोकों के लिए नहीं रहा। धर्म तो सिर्फ उनका है जो साहसी हैं, जो अपने को मिटाने को सदैव तत्पर हैं। मैं ऐसे साहसियों को आमंत्रित करता हूं।' स्वामी शशमौलि ने अपने विशाल नेत्रों को पूरी तरह खोला और उस जनमेदिनी पर दृष्टिक्षेप किया। उनकी दृष्टि में एक ललकार थी, एक आवाहन।

'हम अपने को मिटाने को तैयार हैं। ——पर मिटाएं कैसे ?—— क्या मिटने की कोई विधि भी है ?' बूंदों में बवण्डर आ गया। चारों ओर से चीखें-पुकारें वातावरण में छा गयीं।

'हां है।' स्वामी शशमौलि के चेहरे पर करुणा प्रगाढ़ हो उठी। अत्यंत प्रफुल्लित हो वे बोले, 'अपने को खो देने की विधि है। बूंद के सागर में मिलने का एक सरल उपाय है। अत्यंत सरल उपाय।'

'—क्या है ? —क्या है ? — हमें बताएं।—हम मिटने को तैयार हैं।'

'तुम मिटने को तैयार हो, तो नाचो। नाचो, लोगों नाचो !—मैं तुम्हें नाच सिखाने आया हूं। नाचो। इतना नाचो कि सिर्फ नाच ही नाच रह

जाये । तुम तो मिट ही जाओ । जीवन मात्र नृत्य रह जाये । जीवन को उत्सव बना दो । देखें, अपने चारों ओर देखें । चारों ओर उत्सव मनाया जा रहा है । वृक्ष झूमते हैं, उत्सव है । नदियां हहराती हैं, उत्सव है । हवाएं बहती हैं, उत्सव है । मनुष्य को छोड़कर सब जगह उत्सव है । सिर्फ मनुष्य काम करता है, बाकी सबों का उत्सव है । जीवन जब काम होता है तो कर्तव्य हो जाता है, बोझ हो जाता है, किन्तु जीवन यदि उत्सव हो तो वह क्रीड़ा है, लीला है । मैं कहता हूं तुम जीवन को काम नहीं महोत्सव बना दो । नाचो !

'नृत्य की भाषा सारा जगत समझता है । नृत्य की भाषा ही परमात्मा पसंद करता है । जहां भाषा के शब्द नहीं पहुंचते वहां नर्तक के घुंघुरुओं की ध्वनि पहुंच जाती है । जहां मुख कुछ कह सकने में असमर्थ है वहा चरणों की थाप कोटि कोटि ग्रंथों की रचना कर जाती है । जहां व्याकरण मौन है, जहां विज्ञान विवश है वहां नर्तक का कंपन अणु-अणु में समाविष्ट हो जाता है । मैं कहता हूं सब छोड़ो । नाचो ।

'सूरज नाच रहा है, चांद-तारे नाच रहे हैं, पृथ्वी नाच रही है, आकाश नाच रहा है, सागर नाच रहा है, हवाएं नाच रही हैं, पूरी प्रकृति नाच रही है । तुम भी इस महारास में सम्मिलित हो जाओ । नाचो !

'नाचो, लोगों नाचो ।'

स्वामी शशमौलि की मोहिनी बिखेरती वाणी मौन हो गयी । उन्होंने दोनों हाथ आकाश की ओर उठा दिये । चौपाटी में जैसे भूचाल आ गया । लोगों के पैरों में थिरकन होने लगी । शरीर झूम उठे । हंसियों और अट्टहासों के स्रोत फूट पड़े । कहीं कोई उन्मादित सा चिल्लाया । कहीं कोई भयभीत-सा चीखा । नाच ही नाच ! नाच ही नाच !

'मिटा दें अपने आपको । कोई न बचाये अपने को । सिर्फ नाच शेष रह जाये । दिखा दें, दिखा दें कि मनुष्य भी नाचता है । नाचें, नाचें ! पूरी शक्ति लगा दें । याद रखें अपने को समर्पित करना ही अपनी मालकियत की घोषणा है । नाचें, नाचें ! और जोर से नाचें ! तुम तो मिट ही गये । बस अब तो नाच ही नाच रह गया ——!'

पर्वत की उपत्यका से निकलती नदी की कलकल की तरह उनकी मनोहर वाणी संगीत की तरह उस नृत्य में घुलती मिलती चली गयी । ●

१२–३४६, बेलासिस ब्रिज
तारदेव, बम्बई–३४

(हिन्दू होना, जैन होना, ईसाई होना—यह सब किसी व्यक्ति का अनुगमन है इसलिये चोरी है। ये उधार व्यक्तित्व हैं और शाश्वत नियमों पर आधारित विभिन्न संस्कृतियां नहीं हैं। इन संस्कृतियों द्वारा कैसे शुभ फलित नहीं हुआ, इस संदर्भ में चर्चा)

अचौर्य

महावीर चोर नहीं हैं, उनसे ज्यादा अचोर व्यक्ति खोजना मुश्किल है। लेकिन महावीर जैन नहीं हैं, महावीर जिन हैं। जिन और जैन के अंतर को थोड़ा समझ लेना उचित है। जिन वह है जिसने अपने को जीता। जैन वह है जो जीतने वाले के पीछे चलता है। गौतम बुद्ध चोर नहीं हैं, उनसे ज्यादा अचोर व्यक्ति खोजना मुश्किल है। लेकिन गौतम बुद्ध, बुद्ध हैं, बौद्ध नहीं हैं। बुद्ध वह है जो जागा है। बौद्ध वह है जो जागे हुए के पीछे चलता है। ऐसे ही जीसस चोर नहीं हैं, जीसस क्राइस्ट हैं। क्राइस्ट का मतलब जिसने अपने को शूली दे दी और उसे पा लिया जो स्वयं को मिटाने से उपलब्ध होता है। लेकिन जीसस क्रिश्चियन नहीं हैं। क्रिश्चियन वह है जो शूली पर लटके हुए आदमी के पीछे चलता है। बड़ा फर्क पड़ जाता है। जीसस की गर्दन शूली पर लटकती है और ईसाई की गर्दन में छोटा-सा क्रास लटका रहता है। गर्दनों में क्रास नहीं लटकते, क्रासों पर गर्दनें लटकती हैं। जीसस शूली पर

चढ़ते हैं, वे क्राइस्ट हैं। क्रिश्चियन अपने गले में एक सोने की शूली लटका लेता है। एक तो सोने के क्रास नहीं होते, सोने की शूली नहीं होती। अगर सोने की शूलियां होंगी तो सिंहासन किस चीज का बनाइयेगा। और शूलियां गलों में नहीं लटकाई जातीं, गले शूलियों पर लटकाये जाते हैं, इसलिए क्रिश्चियन चोर हैं।

मुहम्मद बात और है, मुसलमान बात और है। मुहम्मद दुनिया में हों यह सुखद है, सुन्दर है; मुसलमान दुनिया में हों यह खतरनाक है। महावीर दुनिया में हों स्वागत के योग्य हैं, लेकिन जैन दुनिया में हों खतरनाक है। बुद्ध बात और है, सुगंध और है। बुद्ध को मानने वाला दुर्गन्ध है, सुगंध नहीं है। इसके कारण हैं। पहला कारण तो यह कि जैसे ही किसी व्यक्ति ने यह तय किया कि मैं किसी दूसरे के पीछे चलूंगा वैसे ही वह अपनी आत्मा को खोने वाला हो जाता है। दूसरे के पीछे चलने का उपाय ही नहीं है। असल में दूसरे के पीछे चलने का मतलब यह है कि यह आदमी जीवन की वास्तविक यात्रा से बचना चाहता है जो जिन नहीं होना चाहता, वह जैन हो जाता है। जो बुद्ध नहीं होना चाहता वह बौद्ध हो जाता है। जो क्राइस्ट होने की हिम्मत नहीं जुटा पाता वह क्रिश्चियन हो जाता है। वह समझता है कि क्रिश्चियन होने में कुछ भी नहीं करना पड़ता है, क्राइस्ट होना जिन्दगी को जोखम में डालना है। जैन होने में क्या करना पड़ता है? जिन होना बड़ी तपश्चर्या है। जैन होने में सिर्फ जिनों का पीछा करना पड़ता है। पीछा खेल है। जिन होने में पीछा नहीं करना पड़ता है, साधना करनी पड़ती है। साधना संकट है। साधना श्रम है। साधना संकल्प है। असल में जो व्यक्ति अपनी आत्मा को पाने का श्रम नहीं उठाना चाहता वह किसी तरह की पूजा करके अपने मन के लिए खेल पैदा कर लेता है। जो व्यक्ति स्वयं को नहीं पाना चाहता वह किसी दूसरे के पीछे चलने का खेल खेलने लगता है। दूसरे के पीछे चलकर कोई कभी अपने को पा नहीं सका है। क्योंकि दूसरा, सदा दूसरा है। मैं कितना ही दूसरे के पीछे चलूं, सारी पृथ्वी घूम लूं, तो भी मैं भीतर नहीं पहुंच जाऊंगा। अगर मुझे भीतर पहुंचना है तो बाहर चलना बन्द करना पड़ेगा। अनुगमन सदा बाहर चलना है। अनुगमन में सदा बाहर चलना ही होगा। दूसरा बाहर है। उसके पीछे बाहर ही जाना पड़ेगा।

महावीर किसी के पीछे नहीं जाते, जीसस किसी के पीछे नहीं जाते,

कृष्ण किसी के पीछे नहीं जाते। यह बहुत मजे की बात है कि जो लोग किसी के पीछे नहीं गये, उनके पीछे कितने लोग चले जाते हैं। बुद्ध किसी के पीछे नहीं जाते लेकिन बुद्ध के पीछे बहुत लोग चले जाते हैं। अगर बुद्ध से ही सीखना है तो एक बात सीख लेनी चाहिए कि किसी के पीछे नहीं जाना है। अगर महावीर से ही कुछ सीखना है तो एक बात सीख लेनी चाहिए कि किसी की पूजा से कुछ भी होने वाला नहीं है। महावीर किसी की पूजा में नहीं हैं। अगर जीसस से ही कुछ सीखना है तो एक बात सीख लेनी चाहिए कि परमात्मा को बिना क्रिश्चियन हुए भी पाया जा सकता है। जीसस क्रिश्चियन नहीं थे। अगर मुहम्मद से कुछ सीखना है तो एक बात पक्की सीख लेनी चाहिए कि परमात्मा का मुसलमान से लेना-देना नहीं कुछ है। मुहम्मद तो मुसलमान नहीं थे। परमात्मा मुहम्मद को भी मिल सकता है, जो मुसलमान नहीं हैं। जिनके पीछे सारी दुनिया चल रही वे किसी के पीछे नहीं चलते, और उनके पीछे हम इसी लिए चल रहे हैं कि हम भी कुछ पा लें, जो उन्होंने पाया। लेकिन विज्ञान में कहीं भूल हो गई है। गणित में कहीं चूक हो गई है। उन्होंने पाया ही इसलिए कि वे अपने भीतर जाते हैं, और हम पाना चाहते हैं कि किसी के पीछे चलकर मिल जाय। पीछे जाना, बाहर जाना है। इसलिए सब तरह के अनुगमन को मैं चोरी कहता हूं और इस तरह के अनुगमन से संस्कृति पैदा नहीं हुई। संस्कृति के पैदा होने में उल्टी बाधा पड़ी है। क्योंकि ये सारे अनुयायी सिवाय लड़ने के इस पृथ्वी पर और कुछ भी नहीं करते रहे हैं। इन सारे अनुयायियों ने पृथ्वी को खून और रक्त से भरने के सिवाय फूलों से नहीं भरा। ये चर्च और मंदिर, मस्जिद और गुरुद्वारे, मनुष्य को लड़ाने के उपक्रम बन गये हैं, उपकरण बन गये हैं। आदमी का इतिहास धर्मों के युद्धों से भरा है। इन अनुयायियों ने मुहम्मद और महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट को मानकर, कृष्ण और क्राइस्ट बनने की तो कोई घटना नहीं घटायी; लेकिन एक दूसरे की हत्या करने में बहुत कुशलता दिखायी। यह हत्या बहुत तरह की है। कुछ लोग तलवारों को लेकर कूद पड़ते हैं, और कुछ लोग-विचारों की तलवारें चलाते रहते हैं --सिद्धांतों की। जैन मुसलमान के, मुसलमान हिन्दू के, हिन्दू ईसाई के, ईसाई बौद्ध के सिद्धांतों का खण्डन करते रहते हैं। अगर बहुत जोश आ जाय, और सिद्धांतों से लड़ाई-झगड़ा ठीक से न हो सके, तो फिर तलवारें भी खिच जाती हैं।

आदमी, बुद्ध महावीर और क्राइस्ट के होने की वजह से ज्यादा आनंदित होना चाहिए था, लेकिन इनके होने की वजह से बड़ा उपद्रव हुआ है। बर्टेंड रसल ने कहीं लिखा है कि क्या हर्जा था परमात्मा को कि अगर जीसस को न भेजता, तो कम से कम ईसाई तो न होते। ईसाइयों ने मध्य युग में सारे युरोप में लाशें बिछा दीं। अगर जीसस के लिए बर्टेंड रसल जैसे महत्त्वपूर्ण व्यक्ति को यह प्रार्थना सोचनी पड़ी, कि परमात्मा को क्या हर्जा था कि जीसस को न भेजता। इस एक आदमी को न भेजने से पृथ्वी ज्यादा शांत हो सकती थी। कम से कम लड़ने वाला ईसाई तो न होता। यह सोचने जैसा है। जीसस के आने से पृथ्वी बुरी नहीं हुई, जीसस के आने से तो पृथ्वी में सुगंध बढ़नी चाहिये। जीसस के आने से तो पृथ्वी धन्य-भागी होनी चाहिये। लेकिन हो नहीं पायी। क्योंकि जीसस आये नहीं कि क्रिश्चियन आ गया। जीसस जो बनाते हैं, क्रिश्चियन मिटा देता है। जीसस कहते हैं प्रेम करो पड़ोसी को अपने ही जैसा। क्रिश्चियन पड़ोसी के लिए तलवार पर धार रखता है। मुहम्मद कहते हैं कि एक ही परमात्मा है, और सभी बेटे उसके हैं, लेकिन मुसलमान उसी के बेटों को काटने निकल पड़ता है। हिन्दू कहते हैं सभी कुछ परमात्मा है, फिर भी शूद्र को छूते वक्त सभी कुछ परमात्मा है यह वेदान्त का ख्याल एकदम तिरोहित हो जाता है। बड़े से बड़े ज्ञानी को हो जाता है। मुसलमान के साथ बैठते वक्त सरक के बैठ जाता है वह, बड़े से बड़ा ज्ञानी, जो कहता था कि ब्रह्म सबमें विराजमान है। अचानक पता चलता है कि ब्रह्म मुसलमान में विराजमान होने से डरता है। जीसस, कृष्ण, क्राइस्ट, महावीर, बुद्ध, कंफ्युसस इन सबके होने से जगत सौभाग्यशाली था, लेकिन इनके पीछे एक बाढ़ आती है उन उपद्रवों की जो संगठन खड़े करते हैं, जो संगठनों को लड़ाते हैं। अनुयायियों के दल खड़े होते हैं और धर्म, राजनीति बन जाता है। जैसे ही धर्म, अनुयायियों के हाथ में पड़ता है, संगठित होता है, 'ऑर्गनाइज्ड' हो जाता है—वैसे ही राजनीति बन जाता है। धर्म, संगठन नहीं है, धर्म सिद्धांत है। अनुयायी संगठन बनाते हैं, तब एक तरफ संगठन महत्वपूर्ण हो जाता है, और संगठन के जो बाहर हैं वे दुश्मन हो जाते हैं। जो संगठन के भीतर हैं वे अपने हैं और संगठन के जो बाहर हैं

वे पराये हैं। यों हर धर्म, आदमी को खण्डों में बांटता चला जाता है। आज पृथ्वी पर कोई तीन सौ धर्म हैं। आदमी तीन सौ खण्डों में कटा हुआ है। धर्म को तो जोड़ना चाहिए, धर्म तोड़ने के लिए नहीं है। तो फिर तोड़ता कौन है? महावीर तोड़ते हैं? मुहम्मद तोड़ते हैं? दो में से एक ही बात हो सकती है, या तो महावीर ही तोड़ने वाले हैं और या फिर जैन तोड़ने वाला है। या तो मुहम्मद ही तोड़ते हैं या मुसलमान तोड़ता है। या तो जीसस ही उपद्रवी हैं, या फिर तो क्रिश्चियन उपद्रव करते हैं।

मेरी समझ है कि महावीर, जीसस और मुहम्मद उपद्रव नहीं हैं। क्योंकि जिनके जीवन में उपद्रव की शांति हो गयी, वे किसी दूसरे के जीवन में उपद्रव नहीं बन सकते। वे दूसरे के जीवन में शांति का ही संदेश हैं; लेकिन उनके पीछे आने वाला अनुयायी जब खड़ा हो जाता है तब और घटना घट जाती है। अनुयायी के साथ एक रहस्य है। एक साइंटिफिक सूत्र अनुयायी का समझ लेना चाहिए और यह बड़ा मजेदार मामला है। अक्सर विपरीत आदमी अनुयायी बनते हैं, अक्सर। अगर महावीर ने सब छोड़ दिया है तो महावीर के पास वे ही लोग चरणों में आयेंगे जिनके पास सब है। क्यों? महावीर उपवासे रहते हैं तो महावीर के पास भोजनभट्ट इकट्ठे हो जायेंगे। उसके कारण हैं। अगर महावीर को भोजन की कोई चिन्ता नहीं है, तो जो आदमी भोजन को चौबीस घण्टे सोचता है वह सब से पहले प्रभावित होता है। सोचता है कि यह महावीर बड़ा अद्भुत आदमी मालूम होता है। मैं तो चौबीस घण्टे भोजन के बारे में ही सोचता हूं। रात सपने में भी भोजन करता हूं और यह आदमी महीनों भोजन नहीं करता। यह महान तपस्वी है। वह उसके पैर में पड़ जाता है। महावीर नग्न खड़े हैं, तो जिसको वस्त्रों से बहुत मोह है, और जो शरीर को भी नग्न करने में असमर्थ है, वह महावीर को मानता है, कि यह आदमी साधारण नहीं है। इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जैन धर्म के अनुयायी कपड़े की दूकान कर रहे हैं सारे मुल्क में। इसमें महावीर की नग्नता का कुछ न कुछ हाथ है, इसमें जरूर कहीं न कहीं कोई बात है। इसमें आश्चर्य नहीं है कि ईसाइयों ने सारी दुनिया को तहस-नहस किया, और ईसाइयों ने सारी दुनिया

पर साम्राज्य फैलाया। कहां जीसस—जिसने कहा था कि जो तुम्हारे गाल पर एक चांटा मारे तुम दूसरा गाल उसके सामने कर देना, और जिसने कहा था कि जो तुम्हारा कोट छीन ले उसे तुम कमीज भी दे देना। जिसने कहा था कि जो कोई तुमसे एक मील बोझा ढोने को कहे, तुम दो मील तक चले जाना। इस आदमी को मानने वाले लोग सारी दुनिया पर गुलामी ढा देंगे, ये कोट भी छीन लेंगे, कमीज भी छीन लेंगे। ये दो मील की जगह दो हजार मील लोगों को चला देंगे। ये एक गाल पर भी चांटा मारेंगे और दूसरा गाल भी मोड़कर उस पर भी चांटा मार देंगे। यह कभी जीसस ने सोचा न होगा कि जीसस जैसे बनने वाले आदमी के पास इस तरह के लोग इकठ्ठे हो जायेंगे, लेकिन इकट्ठे हो गये।

असल में विरोधी आकर्षित करता है। जैसे स्त्री के प्रति पुरुष आकर्षित होता है, पुरुष के प्रति स्त्री आकर्षित होती है इसी भांति जीवन के सब आकर्षण पोलर हैं, सब आकर्षण विरोधी के अपोजिट के हैं, सब आकर्षण में दूसरा आकर्षित होता है। त्यागी के पास भोगी इकठ्ठे हो जाते हैं, तपस्वियों के पास जो तपश्चर्या बिल्कुल नहीं करते वे चरणों पर सिर रखकर बैठ जाते हैं, परमात्मा के खोजियों के पास संसार को पागल की तरह पकड़े हुए लोगों की भीड़ जमा हो जाती है और फिर यही अनुयायी बनते हैं। इसलिए 'परवर्शन' शुरू हो जाता है। तत्काल, जो महावीर ने कहा जैन उसे विकृत कर डालते हैं, जो जीसस ने कहा ईसाई उसे नष्ट कर देता है, जो मुहम्मद ने कहा मुसलमान ही उसे मिटानेवाला बन जाता है। यह बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण है, लेकिन है। विपरीत आकर्षण है। इसलिए मैं कहता हूं कि समस्त अनुयायियों को पृथ्वी से विदा हो जाने की जरूरत है। मुहम्मद रहें, बुद्ध रहें, उनकी सुगंध रहे, बीच में अनुयायी न हों। महावीर की बात लोग सुनें, समझें, पढ़ें, लेकिन कोई इस पागलपन में न पड़े कि कहे, मैं उनका अनुयायी हूं। समझें, पढ़ें, सोचें, आनंदित हों, प्रसन्न हों, नाचें, लेकिन पकड़ें मत। काफी हो चुका पकड़ना, और उस पकड़ने के बुनियादी सूत्र का ख्याल न होने से बड़ी कठिनाई हो गयी है। वह बुनियादी सूत्र है कि 'अपोजिट', विरोधी, आकर्षक होता है और हम उसके पास इकठ्ठे हो जाते हैं। वह जो इकठ्ठा होना है, वही यों समझिये कि तत्काल दुश्मन के हाथ में बाजी चली जाती है। जिन्दगी में करीब करीब ऐसा ही नियम है, जैसे पानी में लकड़ी को डालते ही तिरछी हो जाती है—होती नहीं, दिखायी पड़ते लगती है तत्काल। पानी और हवा के

नियम अलग अलग हैं। जैसे ही लकड़ी हवा में आती है वापस सीधी हो जाती है। पानी में डालो फिर तरछी दिखायी पड़ने लगती है। महावीर में जो लकड़ी बिल्कुल सीधी है जैन में बिल्कुल तिरछी दिखायी पड़ने लगती है। बुद्ध में जो जीवन सीधा सरल है, बौद्ध में बिल्कुल जटिल और तिरछा हो जाता है। मुहम्मद की जिन्दगी में जो प्रेम है वह मुसलमान की जिन्दगी में घृणा, और जीसस की जिन्दगी में जो समर्पण है वही जीसस के अनुयायी की जिन्दगी में आक्रमण बन जाता है। अब अनुयायियों से सावधान होने के लिए काफी इतिहास प्रामाणिक है। इसका यह मतलब नहीं कि मैं कोई महावीर का दुश्मन हूं। दुश्मन तो उनके अनुयायी हैं। अगर जीसस को उनकी शुद्धता में बचना हो तो अनुयायी के कांच अलग कर देने चाहिए। किसी आदमी को अनुयायी बनने से कुछ नहीं मिलता। सिर्फ जिसका वह अनुयायी बनता है उसको भ्रष्ट, उसके सिद्धांतों को, उसके जीवन को विकृत करने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं कर पाता है। अपने जीवन को तो कभी ठीक नहीं कर पाता। मैं अभी एक छोटी सी कहानी पढ़ रहा था :

एक बच्चा अपने पिता से बात कर रहा है, उस बच्चे ने अपनी किताब में से एक कहावत पढ़कर सुनायी। इस कहावत में लिखा हुआ है कि आदमी उसके संग से पहचाना जाता है। उस लड़के ने अपने पिता से पूछा, क्या यह बात सही है? उसके पिता ने कहा, यह बिल्कुल ही सही है। तो उस लड़के ने कहा, अब एक सवाल और पूछना है। एक अच्छा आदमी और एक बुरा आदमी इन दोनों में दोस्ती है। कौन किससे पहचाना जायगा ? बुरा आदमी अच्छे आदमी के साथ है इसलिए समझना चाहिए कि अच्छा आदमी है या अच्छा आदमी बुरे आदमी के साथ है इसलिए समझना चाहिए कि बुरा आदमी है ? अब किस को किससे पहचानें ? वह पिता मुश्किल में पड़ गया है।

जीसस पहचाने जा रहे हैं ईसाई के द्वारा इसलिए जीसस को पहचानना मुश्किल हो गया है। महावीर पहचाने जा रहे हैं जैन के द्वारा इसलिए महावीर को पहचानना मुश्किल हो गया है। अनुयायी हट जायं तो इनके फूल अपनी पूरी खूबसूरती में खिल सकें, इनके दिये अपनी पूरी ज्योति में जल सकें, और एक मजा हो जाय कि हम सारे जगत की संपत्ति के मालिक हो जायं। अभी जो महावीर को मानता है वह समझता है मुहम्मद उसकी सम्पत्ति नहीं हैं और जो मुहम्मद को मानता है वह समझता है बुद्ध से मुझे क्या लेना-देना है। उनसे अपना कोई लेना-देना नहीं है। वह और किसी की बपौती हैं, हमारी नहीं। अगर दुनिया में किसी दिन अनयायी न रहें तो सारी दुनिया का हेरीटेज, सारी दुनिया की बपौती, प्रत्येक

आदमी की बपौती होगी। उसमें सुकरात भी मेरा होगा, मुहम्मद भी मेरे होंगे, महावीर भी मेरे होंगे और तब हम ज्यादा सम्पन्न होंगे और तब संस्कृति पैदा होगी। अभी तो संस्कृति पैदा ही नहीं हुई, अभी तो बहुत तरह की विकृतियां हैं और उन विकृतियों को हम अपनी अपनी संस्कृति कहे चले जाते हैं। मनुष्य की संस्कृति उस दिन पैदा होगी जिस दिन सारे जगत का सब कुछ हमारा होगा। सोचें इसे एक और उदाहरण से तो ख्याल में आ जाय।

अगर विज्ञान में भी पच्चीस मत बन जायं, तो दुनिया में विज्ञान बचेगा कि मिटेगा? अगर न्यूटन के मानने वाले दूसरा गिरोह बना लें और आइंस्टीन के मानने वाले दूसरा गिरोह बना लें; और न्यूटन के मानने वाले कहें, 'आइंस्टीन को हम नहीं मान सकते हैं क्योंकि हमारे गुरु की कुछ बातों के विपरीत बोल दिया है,' ऐसे ही अनेक गिरोह बनते चले जाएं, तो अभी दो-तीन सौ वर्ष में पचास जो बड़े वैज्ञानिक हुए, उनके पचास गिरोह बन जाएं तो विज्ञान विकसित होगा, कि मरेगा? विज्ञान विकसित हो सका क्योंकि विज्ञान के कोई गिरोह नहीं है। वैज्ञानिकों ने जो भी दिया है वह सब वैज्ञानिकों की सामूहिक बपौती है। धर्म संस्कृति पैदा नहीं कर पाया क्योंकि धर्म के गिरोह बन गये हैं। दुनिया में तीन सौ गिरोह हैं इसलिए धर्म कैसे पैदा हो? काश ये गिरोह बिखर जाएँ।

महावीर ने भी दिया है एक कोने से, उन्होंने एक दर्शन दिया है सत्य का। बुद्ध ने किसी दूसरे कोने से वह दर्शन दिया है, मुहम्मद ने किसी तीसरे कोने से वह दर्शन दिया है, क्राइस्ट उसी की कोई चौथी खबर ले आये हैं। ये सारी की सारी संपत्तियां हमारी हैं, मनुष्य की हैं, और अगर ये सारी संपत्तियां इकट्ठी हों और हम सब इसके वसीयतदार हों, तो दुनिया में संस्कृति पैदा होगी। अभी संस्कृति नहीं है,—सिर्फ खंड खंड विकृतियां हैं। सारी संपत्ति हमारी हो तो दुनिया में धार्मिक चित्त पैदा होगा। अभी धार्मिक चित्त नहीं, केवल सांप्रदायिक चित्त है, फ्रस्टेरियन माइंड है। अभी 'रिलीजस माइंड' दुनिया में नहीं है। जब कभी कोई एक आदमी धार्मिक पैदा होता है तो उसके आसपास तत्काल सांप्रदायिक इकट्ठे हो जाते हैं, और वह आदमी जिन्दगी भर जो मेहनत करके खोज पाता है उसके आसपास इकट्ठे लोग थोड़े ही दिन में उसकी मेहनत नष्ट करके विकृत कर देते हैं। महावीर किसी के भी नहीं हैं, बुद्ध किसी के भी नहीं हैं, या सबके हैं। कोई उनका मालिक नहीं है, कोई उनका दावेदार नहीं है, या फिर सब उनके दावेदार हैं। यह स्थिति बने तो धर्म भी एक विज्ञान बन जाय। धर्म है भी विज्ञान, मेरी दृष्टि में

तो परम विज्ञान है, 'सुप्रीम साइंस' है, लेकिन अब तक बन नहीं पाया है। धर्म अगर विज्ञान बने तो जीवन संस्कृत होगा, तो जीवन रिफाइंड होगा, तो जीवन विकसित होगा। अभी तो धर्म विकृति ही बन पाया, क्योंकि सम्प्रदाय ही निर्मित होते हैं और कुछ भी निर्मित नहीं होता है। कौन है जिम्मेदार ? अनुयायी जिम्मेदार हैं। अगर अनुयायी भी कहीं पहुंच गया होता यह सब उपद्रव करके, तो भी हम कहते। पर अनुयायी कहीं भी नहीं पहुंच पाता है। कभी पहुंचा नहीं, कभी पहुंच भी नहीं सकेगा। क्योंकि वह मौलिक सूत्र ही भूल गया है। खोजना होगा स्वयं को और चलना होगा भीतर। दूसरे के पीछे जो गया वह स्वयं को खो सकता है, पा नहीं सकता।

☆

त था ता

आचार्यश्री रजनीश की युगप्रवर्तक विचारधारा के प्रचार-प्रसार के लिए

सम्प्रति

'तथाता' ग्रंथमाला का प्रकाशन शुरू हो गया है

बाद में शीघ्र ही

इस 'तथाता' को मासिक-पत्रिका का रूप प्रदान किया जाएगा

संपादक : मा आनंद मधु

'तथाता' ग्रंथमाला का प्रकाशित साहित्य :

- १– अभिनव संन्यास
- २– ध्यान
- ३– प्रेम
- ४– परिवार

प्रत्येक मास की पहली तारीख को प्रकाशित

●

वार्षिक शुल्क : ५ रुपये

सम्पर्क के लिए लिखें :

विश्वनीड़,
संस्कारतीर्थ,
आजोल,
जि. महेसाना
(गुजरात)

प्रेमी मुमुक्षुओं को—

(आचार्यश्री रजनीश के अमृत-पत्र)

पकने दो प्यास को

मेरे प्रिय,

प्रेम! नहीं—प्यासे नहीं रहोगे।

देर है—अंधेर नहीं।

और देर भी है तो स्वयं ही के कारण।

प्यास पकेगी तब ही तो कुछ होगा न?

फिर कच्ची प्यास को छेड़ना उचित भी नहीं है।

पकने दो प्यास को

गहन होने दो, तीव्र होने दो।

झेलो पकने की पीड़ा।

झेलनी ही पड़ती है, क्योंकि निर्मूल्य कुछ भी नहीं है।

मूल्य चुकाओ।

गुजरो जीवन से।

दुःख से—संताप से।

नर्कों से—स्वर्गों की आशा में।

बनाओ भवन ताशों के—क्योंकि और किसी प्रकार के भवन पृथ्वी पर बनते ही नहीं हैं!

और हवा के झोंके जब उन्हें गिरा दें—तो रोओ।

टूटो और स्वयं भी उनके साथ गिरो।

तैराओ नावें कागजों की महासागरों में-- क्योंकि आदमी और किसी भांति की नावें बनाने में समर्थ ही नहीं है।

और फिर जब लहरों के थपेड़े उन्हें डुबा दें—तो पछताओ जैसे कि सुखद-स्वप्न टूट जाये तो कोई भी पछताता है।

और ऐसे ही यात्रा होगी।

और ऐसे ही अनुभव शिक्षा देंगे।

और ऐसे ही ज्ञान जगेगा।

और पकेगी प्यास।

और तुम स्वयं को दांव पर लगा उसे खोजोगे जो कि समस्त प्यासों के पार ले जाता है।

वह तो निकट ही है—बस तुम्हारी ही स्वयं को दांव पर लगाने की देर है।

रजनीश के प्रणाम

१६-४-१९७१

(प्रति : श्री राजेन्द्र खजान्ची, पो. सावली, जि. चन्द्रपुर, महा.)

●

संसार में अभिनेता की भांति जीना योग है

मेरे प्रिय,

प्रेम। ध्यान के पहले अवतरण में कर्म-रुचि सदा ही खो जाती है।

उपेक्षा—पूर्ण शून्यता से भी गुजरना पड़ता है।

लेकिन यह मंजिल नहीं—मार्ग की घटना है।

संक्रमण का ऐसा ही क्षण तुम्हारी यात्रा में भी आ उपस्थित हुआ है।

इससे भयभीत न होओ और प्रयासपूर्वक कर्म किये जाओ।

हां—स्वयं को कर्ता न जान सकोगे अब।

इसलिए, साक्षी-भाव को और गहराओ और इस भांति कर्म करो जैसे कि अभिनय कर रहे हो।

और फिर संसार में अभिनेता की भांति जीना ही तो योग है।

रजनीश के प्रणाम

१४-४-१९७१

(प्रतिः श्री धनवन्त, अमृतसर)

भगवान श्री रजनीश द्वारा स्थापित

नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय

(Neo-Sannyas International)

व्यक्ति के जागरण के लिए, समाज के सर्वांगीण विकास के लिए एवं धर्म के पुनरुत्थान के लिए भगवान श्री रजनीश की प्रेरणा एवं साक्षीत्व में एक नव-संन्यास आन्दोलन का सूत्रपात आज से लगभग ९ माह पहले हुआ था।

अल्प समय में ही इस आन्दोलन के अन्तर्गत देश एवं विदेश के लगभग ४०० व्यक्ति संन्यास के जीवन में दीक्षित हो चुके हैं। इनमें अनेक धर्मों के लोग हैं, जैसे– हिंदू, जैन, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, बौद्ध, सिक्ख आदि।

विदेशों में अनेक प्रमुख शहरों में नव-संन्यास आन्दोलन के जो संन्यासी एवं संन्यासिनी हैं उनकी संख्या इस प्रकार है : न्यूयार्क––५, केलिफोर्निया–२, वर्जीनिया बीच (अमेरिका)–१, रोम–२, पेरिस–३, इंग्लैंड–२, टोकियो–१.

धर्म-चक्र-प्रवर्तन के इस अन्तर्राष्ट्रीय रूप लेते हुए आन्दोलन को दृढ़ता एवं व्यवस्था देने के लिए इसकी एक अन्तर्राष्ट्रीय रूपरेखा निर्मित हुई है। "नव-संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय" नामक इस आन्दोलन का विश्व-शीर्ष-केंद्र (World Head Quarters) न्यूयार्क (अमेरिका) को रखा गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय, महाद्वीप, राष्ट्र, राज्य एवं जिला के तल पर नव-संन्यासियों की अध्यक्ष, उपाध्यक्ष एवं महामंत्री के पदों पर निम्नांकित नियुक्तियां भगवान श्री रजनीश के द्वारा की गई हैं :

अन्तर्राष्ट्रीय नियुक्तियां

अध्यक्ष : आदरणीया मा योग भक्ति (कुमारी ब्लिथ गिलमोर), संस्थापक-संचालक, शिवानंद आश्रम, न्यूयार्क (अमेरिका)

उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी मधुसूदन सरस्वती (श्री चम्पकभाई संघवी), अहमदाबाद, भारत.

महामंत्री : आदरणीया मा आनंद प्रेम (कुमारी हेलेन शुलमान) सहायक योगशिक्षिका, शिवानंद आश्रम, न्यूयार्क.
आदरणीया मा ध्यान सिद्धि (श्रीमती ई. वेलिंगटन)

महाद्वीपीय नियुक्तियां

योरोप:–अध्यक्ष : आदरणीया मा वीत संदेह (कुमारी डा. ग्राजिया मरकियानो), रोम, इटली.

महामंत्री : आदरणीया मा योग स्मृति (कुमारी मेरी नॉपका), पेरिस, फ्रांस.

एशिया :– अध्यक्ष : आदरणीय स्वामी आनंद बोधिसत्व (श्री वसंत लाल नेन्सी शाह), सहायक आयकर कमिश्नर अहमदाबाद, भारत.

उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी सत्य बोधिसत्व (श्री जयंतीलाल एम. ठाकर) डायकेम कॉरपोरेशन, अहमदाबाद, भारत.

महामंत्री : आदरणीय स्वामी आनंद वीतराग (डॉ. रामचंद्र प्रसाद), रीडर, अंग्रेजी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना, भारत.

उत्तर अमेरिका:–अध्यक्ष : आदरणीया मा योग मुक्ता (श्रीमती केथेरीन वेनिजेलॉस) न्यूयार्क, अमेरिका.

महामंत्री : आदरणीय स्वामी कृष्ण क्राइस्ट (श्री वाल्टर फूजे), मोनरो, न्यूयार्क, अमेरिका.

राष्ट्रीय नियुक्तियाँ

यू.एस.ए.:–अध्यक्ष : आदरणीया मा योग ताओ (कुमारी मेरी एलिजाबेथ एन स्मॉल), वरजीनिया बीच, अमेरिका.

महामंत्री : आदरणीय स्वामी शरणानंद भारती (श्री जॉन माइकेल ट्रेविस), बर्कले, केलिफोर्निया, अमेरिका.

भारत:–अध्यक्ष : आदरणीया मा आनंद मधु (सुश्री धर्मिष्ठा शाह), विश्व नीड़, आजोल, गुजरात, भारत.

उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी अमृत बोधिसत्व (श्री अनोपचंद एम. शाह), मैनेजर, जेनिथ इंजीनियरिंग वर्क्स, सुरेंद्रनगर, गुजरात, भारत

महामंत्री : आदरणीय स्वामी कृष्ण कबीर (श्री चंद्रकान्त ब्रह्मचारी), अहमदाबाद, भारत.

इटली:–अध्यक्ष : आदरणीया मा कृष्ण राधा (श्रीमती जेकलीन क्रेमर), रोम, इटली.

फ्रांस:–अध्यक्ष : आदरणीया मा आनंद साधना (कुमारी मार्गेरीटा रूसो), पेरिस, फ्रांस.

उपाध्यक्ष : आदरणीया मा आनंद पूर्णिमा (कुमारी ओदिल लोहों अथालन), पेरिस, फ्रांस.

महामंत्री : आदरणीया मा योग सरस्वती (कुमारी डॉ. कोलेट गुडनेबर्ट), पेरिस, फ्रांस.

इंग्लैण्ड:–अध्यक्ष : आदरणीया मा योग विवेक (कुमारी क्रिस्टीन वूल्फ), ससेक्स, इंग्लैण्ड.

महामंत्री : आदरणीय स्वामी आनंद चैतन्य (श्री रिचार्ड एलिसन), ब्रिस्टॉल, इंग्लैण्ड.

जापान:–अध्यक्ष : आदरणीया मा योग मैत्री (सुश्री यूकी फ्यूजीता), टोकियो, जापान.

भारत के विभिन्न राज्यों में नियुक्तियाँ

गुजरात :—अध्यक्ष : आदरणीय स्वामी अमृत ऋषि (श्री मनुभाई एन. वोरा), एडवोकेट एवं वायस प्रिंसिपल, लॉ कालेज, सुरेंद्रनगर

उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी अमृत चैतन्य (श्री हसमुख भाई वोरा), एडवोकेट, सुरेंद्रनगर.

आदरणीय स्वामी अनादि आनंद (श्री राजेन राजेन्द्र पाल), अहमदाबाद

महामंत्री : आदरणीय स्वामी गीत गोविन्द (श्री रमेशकुमार पटेल), अहमदाबाद

महाराष्ट्र:–अध्यक्ष : आदरणीय स्वामी गोविंद सिद्धार्थ (श्री जयेंद्र लश्करी), बम्बई

उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी आनंद भारती (श्री हिम्मतभाई), विलेपार्ले, बम्बई.

आदरणीया मा आनंद मीरा (श्रीमती सुशीला तापड़िया), बम्बई

महामंत्री : आदरणीय स्वामी रोहित सिद्धार्थ, (श्री रोहितकुमार खेराज), मुलुंड, बम्बई

मध्यप्रदेश:–अध्यक्ष : आदरणीय स्वामी आनंद विजय (श्री नेमिकुमार), जबलपुर

उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी प्रेम विजय (डॉ० बालगोविंद अवस्थी), जबलपुर

आदरणीय स्वामी आनंद सागर (श्री करुण प्रकाश धींगरा), जबलपुर

महामंत्री : आदरणीय स्वामी अगेह भारती (श्री शिवप्रतापसिंह 'शिव'), जबलपुर

पंजाब:— अध्यक्ष : आदरणीय स्वामी अमृत अद्वैत (श्री पूरनचंद), अमृतसर

उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी नरेंद्र सरस्वती (श्री नरेंद्रकुमार शर्मा), अमृतसर

आदरणीय स्वामी जगदीश भारती (श्रीजगदीशचन्द्र), अमृतसर

महामंत्री : आदरणीय स्वामी सत्यनारायण भारती (श्री सत्यनारायण अग्रवाल), पो. झरझर, जिला–रोहतक

बिहार:– उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी आनंद समर्थ (श्री जुगल किशोर सिंह), पटना

महामंत्री : आदरणीय स्वामी आनंद संकल्प (श्री ब्रह्मदेव झा), पटना

राजस्थान:– अध्यक्ष : आदरणीय स्वामी ब्रह्म सरस्वती (पंडित देवकीनंदन), ग्राम-गुडा ऐंदला, जिला–पाली.

उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी मुक्तानंद सरस्वती (श्री दाऊलाल त्रिवेदी) प्रासीक्यूटिंग पुलिस इंस्पेक्टर, सिरोही

महामंत्री : आदरणीय स्वामी प्रेम कृष्ण, विश्वनीड़, आजोल, गुजरात

मसूर:– उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी शून्य सरस्वती (श्री संगप्पा मास्टर), पो. धनूरा जिला–बीदर.

महामंत्री : आदरणीय स्वासी अमृत स्वरूप (श्री बाबासाहेब पाटेल), पो. हलसर जि. बीदर

बंगाल:– महामंत्री : आदरणीय मा योग विदेह (श्रीमती चंद्रा पूनमचंद शाह), कलकत्ता

दिल्ली:– अध्यक्ष : आदरणीय स्वामी चैतन्य भारती (श्री हरीश), दिल्ली

उपाध्यक्ष : आदरणीय स्वामी अमृत परमहंस (श्री ठाकुरदास), दिल्ली

महामंत्री : आदरणीय स्वामी विजय भारती (श्री ताराचंद), दिल्ली

प्रत्येक प्रान्तों के विभिन्न जिलों में जिन संन्यासियों की 'नव–संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय' के अन्तर्गत नियुक्तियां की गई हैं उसकी जानकारी 'ज्योतिशिखा' के अगले अंक में दी जावेगी ।

"नव संन्यास अन्तर्राष्ट्रीय" (NEO-SANNYAS INTERNATIONAL)

एन. एस. आई. का लक्ष्य एवं कार्य (लीला):–

(१) नव-संन्यास की धारणा एवं उपयोगिता का शिक्षण एवं प्रसार।

(२) वैज्ञानिक साधना प्रणालियों के आधार पर धर्म का पुनरुत्थान ।

(३) प्रत्येक व्यक्ति को उसके स्व-धर्म में प्रतिष्ठित करने के लिए उसे विशेष ध्यान की पद्धति सिखाना । ११२ ध्यान की विधियों का अलग-अलग व्यक्तियों के लिये उपयोग ।

(४) धर्म साधनाओं की गुप्त व गुह्य विधियों को प्रगट करना एव उन्हें वैज्ञानिक एवं आधुनिक जीवन के साहस एवं चुनौती के समक्ष स्थापित करना ।

(५) विभिन्न धर्म प्रणालियों के बीच समन्वय स्थापित करने के बदले प्रत्येक प्रणाली की शुद्धतम, मौलिक एवं वैज्ञानिक विधियों को सामने लाकर उन्हें सुरक्षित करना एवं उन्हें प्राणवान बनाना ।

अनेक साधना–पीठों, आश्रमों एवं प्रयोगशालाओं में विभिन्न साधना प्रणालियों पर पुनः प्रयोग एवं शोधकार्य।

(६) किसी नये धर्म अथवा परम्परा को जन्म न देकर पुरातन एवं सनातन धर्म-प्रणालियों को ही पुनरुज्जीवित करना।

एन. एस. आई. के ठोस कदम :

(१) धर्म–जिज्ञासुओं को नव-संन्यास में दीक्षित होने के लिए प्रेरित एवं तैयार करना ।

(२) अपने प्रयोगों के लिए आर्थिक अनुदान एकत्रित करना ।

(३) अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, राज्य, प्रान्त एवं जिला के तलों पर आधुनिक साधना केंद्रों, आश्रमों, विहारों व प्रयोगशालाओं का निर्माण जहां संन्यासी निवास, अध्ययन, साधना एवं प्रयोग करेंगे । 'विश्व नीड़' नामक एक आश्रम गुजरात में पिछले ६ माह से चल रहा है जिसमें २०–२५ संन्यासी निवास करते हैं । देश एवं विदेश के अनेक स्थानों पर आश्रम निर्मित होने वाले हैं ।

(४) सम्यक् जीवन-दृष्टि एवं जीवन-विधि के प्रसार हेतु अनेक प्रांतीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं में पुस्तकों, पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों का प्रकाशन ।

हिंदी त्रैमासिक "ज्योति शिखा", हिंदी मासिक "युक्रांद", गुजराती साप्ताहिक ॐ (ओम्) एवं गुजराती मासिक "तथाता" का प्रकाशन हो रहा है ।

एक अन्तर्राष्ट्रीय अंग्रेजी मासिक "संन्यास" का प्रकाशन न्यूयार्क, अमेरिका से प्रारम्भ होने जा रहा है । इन सब प्रकाशन कार्यों के लिए एन. एस. आई. एक बड़ा प्रेस भी स्थापित करने जा रहा है ।

(५) एक अन्तर्राष्ट्रीय "ध्यान विश्वविद्यालय" की नींव रखी जाने वाली है जिसके कुलपति, उपकुलपति, आचार्य, विद्यार्थी एवं कार्यकर्त्ता नव-संन्यासी ही होंगे । यह विश्वविद्यालय एन. एस. आई. का समग्र स्रोत, प्राण एवं आधार होगा । ★

ध्यान-केन्द्र

जो प्रेमी सज्जन ध्यान के अभ्यास द्वारा आध्यात्मिक गहराइयों में उतरना चाहते हैं उनके लाभार्थ नीचे लिखे स्थानों पर व्यवस्था की गई है :

१– सर चुन्नीलाल बी. मेहता,
सागर दीप, ग्राउंड फ्लोर, रिज रोड,
बम्बई-२६

समय : प्रातःकाल ७.३० बजे
सायंकाल ७.३० बजे

२– मा कृष्ण शोभना,
द्वारा श्री एच. डी. रूपारेल,
७ व्यू विला, ४२५ स्वामी श्रद्धानंद रोड, माटुंगा,
बम्बई-१९

समय : सायंकाल ६.३० बजे

●

प्रभु-कृपा-चिकित्सा

जिन्हें प्रभु का प्रसाद प्राप्त है उनके द्वारा असाध्य रोगों की चिकित्सा भी संभव है। जो लोग ऐसी प्रभु-कृपा-चिकित्सा द्वारा रोग-मुक्त होने की कामना रखते हों, उनके लिए नीचे लिखे स्थान पर प्रबंध किया गया है :

डिवाइन हीलिंग सेंटर,
डॉ. एन. के. शाह पोली-क्लिनिक,
१५ बाबुलनाथ, बम्बई-७

समय : सायंकाल ५ से ६-३० बजे

मुद्रक प्रकाशक : ईश्वरलाल एन. शाह, जीवन जागृति केन्द्र, एम्पायर बिल्डिंग, रूम नं. ५३, डा. डी. एन. रोड फोर्ट, बम्बई–१ मुद्रणस्थान : स्टेट्स पीपल प्रेस, बम्बई १

जीवन जागृति केन्द्र, मुंबई द्वारा प्रकाशित आचार्यश्री रजनीश साहित्य

हिन्दी साहित्य	मू. रुपया
जिन खोजा तिन पाइयां	२०–००
ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरिया	४–००
गीता-दर्शन	५–००
प्रेम के फूल	५–००
प्रभु की पगडंडियां	४–००
क्रांतिबीज	३–००
नई दिशा नई बात	०–३०
अमृतकण	०–६०
अहिंसादर्शन	०–५०
सत्य की पहली किरण	६–००
शांति की खोज	२–००
मैं कौन हूँ	२–००
कुछ ज्योतिर्मय क्षण	१–००
नये मनुष्य के जन्म की दिशा	०–७५
बिखरे फूल	०–३५
अज्ञात की ओर	२–००
नये संकेत	२–००
संभोग से समाधि की ओर	३–५०
संस्कृति के निर्माण में सहयोग	०–३०
अंतर्यात्रा	३–५०
अस्वीकृति में उठा हाथ	५–००
सत्य का सागर शून्य की नाव	३–००
आचार्य रजनीश : समन्वय, विश्लेषण,संसिद्धि	७–५०

प्राप्ति स्थल:

(१) जीवन जागृति केन्द्र, रूम नं. ५३, एम्पायर बिल्डिंग, डा. डी. एन. रोड, बंबई :१
(२) मोतीलाल बनारसी दास, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-७
(३) स्वदेशी वस्तु भंडार, जामनगर
(४) आर. अंबानी एंड कं., अपोजिट : जिमखाना, राजकोट
(५) चंद्रकांत पटैल, आसोपालव, बैंक आफ इंडिया के सामने, रायपुरा, बड़ौदा
(६) मोतीलाल बनारसी दास, नेपाली खपरा, वाराणसी
(७) मोतीलाल बनारसीदास, अशोक राजपथ, पटना
(८) भारतीय संस्कृति भवन, माई हीरांगेट, जालंधर
(९) सस्तु किताब घर, पथ्थर कुवां, रिलीफ रोड, अहमदाबाद
(१०) बालगोविंद कुबेरदास, गांधी रोड, अहमदाबाद
(११) सर्वोदय साहित्य भंडार, महात्मा गांधी मार्ग, इन्दौर–२
(१२) हीराभाई मेहता, पांचघर, ७०, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता : १
(१३) सुषमा साहित्य मंदिर, जवाहरगंज, जबलपुर
(१४) युनिव्हर्सल बुक सर्विस, सिटी कालेज के सामने, जबलपुर
(१५) श्री आर. के. पुंगलिया, १०१, टिम्बर मार्केट, पूना-२

ज्योति शिखा

२१

जून १९७१

जीवन जागृति केन्द्र